

आगे कहते हैं कि दोषेकी विशुद्धिकी विशुद्धिके लिए और क्रिया विशेषकी सिद्धिके लिए कायोत्सर्गका जितना काल कहा है उतने काल तक कायोत्सर्ग करनेके बाद भी यदि कायोत्सर्ग करता है तो उसमें कोई दोष नहीं है, बल्कि लाभ ही है-

दोषों को दूर करनेके लिए और आवश्यक कृत्यके लिए कायोत्सर्ग करनेके बाद भी कर्मोंकी निर्जरा तथा सवंबरके लिए और तपकी वृद्धिके लिए शक्तिके अनुसार कायोत्सर्ग करना चाहिए ॥ १२५ ॥

आगे मन-वचन-कायसे शुद्ध कृतिकर्मके अधिकारीका लक्षण कहते हैं--

जिस कृतिकर्ममें मन आराधणीय सिद्ध आदिके स्वरूपमें अतिशय अनुरागी होनेके साथ विशुद्ध भावसे युक्त होता है, शरीर बाह्य शुद्धिके साथ गुरुजनोंके द्वाराकी जानेवाली पुरःक्रिया के क्रमका उल्लंघन करके अपने योग्य आसानस्थान आदिको लिये हुए होता है, तथा वचन वर्ण पद आदिकी शुद्धिको लिये हुए होनेके साथ ज्येष्ठ जनोंके अनुक्रमके प्रशस्त उच्चारणसे युक्त होता है, उस कृतिकर्मको करनेके लिए वही समर्थ होता है जो अर्हन्तकी उपासनाके लिए उत्सुक हो, परमार्थको समझतो हो, शास्त्रोक्त क्रिया और आत्मज्ञान दोनोंमें

स व्याधेरिव कल्पत्वे विदृष्टेरिव लोचने ।

जायते यस्य संतोषी जिनवक्तृविलोकने ॥

परीषहसहः शान्तो जिनसूत्रविशारदः ।

सम्यग्दृष्टिरनाविष्टो गुरुभक्तः प्रियंवदः ॥

आवश्यकमिदं धीरः सर्वकर्मनिसूदनम् ।

सम्यक् कतु मसौ योग्यो नापरस्यास्ति योग्यता ॥ [अमि. श्रा. ८/१९-२१] ॥ १२६ ॥

अथ मन्दमतिसुखप्रतिपत्तये कमवदिति विशेषण विवृण्वत्राह--

प्रेप्सुः सिद्धिपथं समाधिमूपविश्यावेद्य पूज्यं क्रिया-

मानम्याविलयभ्रमत्रयशिरोनामं पठित्वा स्थितः ।

साम्यं त्यक्ततनुर्जिनान् समदृशः स्मृत्वावनम्य स्तवं

युक्त्वा साम्यवदुक्त भाक्तिरुपविश्यालोचयेत् सर्वतः ॥ १२७ ॥

उत्पाहयुक्त हो, परीषह, उपसर्ग आदिको सह सकता हो तथा जिसे सांसारिक विषयोंकी अभिलाषा न हो ॥ १२६ ॥

विशेषार्थ-कृतिकर्म करनेके योग्य कौन होता है उसमें क्या विशेषताएँ होनी चाहिए इसको यहाँ स्पष्ट किया है । उसका मन, वचन, काय पवित्र होना चाहिए । मनकी पवित्रताके लिए परिणामोका विशुद्ध होना आवश्यक है । यदि मनमें भोगाकांक्षा है या अन्य सांसारिक कठिनाईयोंको दूर करनेका

अभिप्राय है तो मन विशुद्ध नहीं हो सकता। उसके लिए निष्काम भावनासे अर्हन्त सिद्ध आदि उपासनीय पवित्र आत्माओंके स्वरूपमें मनको अत्यन्त अनुरागी होना चाहिए। यह अनुराग तभी होता है जब सांसारिक विषयोंके प्रति विरक्ति होती है। वचनकी शुद्धिके लिए जो पाठ पढ़ा जाये वह शुद्ध जाना चाहिए, उसमें अक्षर पद आदिका उच्चारण शुद्ध हो, गुरुजनोके साथ पढ़ना हो तो अपना बड़प्पन प्रकट करनेकी भावना नहीं होनी चाहिए। उनकी ज्येष्ठताको रखते हुए ही घीर-गम्भीर रूपमें पढ़ना चाहिए। शरीरकी शुद्धि के लिए बाह्य शुद्धि तो आवश्यक है ही, साथ ही अपनेसे आयमें, ज्ञानमें, आचारमें जो ज्येष्ठ हैं उनको उच्चस्थान देते हुए ही अपने योग्य आसनपर बैठना चाहिए। साधुसंघसे सब साधु मिलकर कृतिधर्म करते हैं उसीको दृष्टिमें रखकर यह कथन है। इन तीन शुद्धियोंके सिवाय कृतिकर्मका अधिकारी वही होता है जिसकी दृष्टि कृतिकर्मकेकेवल बाह्य रूपपर ही नहीं होती किन्तु जो बाह्य क्रियाके साथ आत्मज्ञानकी ओर भी संलग्न होकर दोनोंकाही संग्रही होता है। इसलिए उसे तात्त्विक होना चाहिए, तत्वको जाननेवाला-समझनेवाला होना चाहिए क्योंकि उसके बिना कोरे रियाकाण्डसे कोई लाभ नहीं है। जो ऐसा होता है वह निस्पृही तो होता ही है। तथा कृतिकर्मके अधिकारीको कृतिकर्म करते हुए कोई उपसर्ग-परिषह आदि आ जावे तो उसे सहन करनेकी क्षमता होनी चाहिए। कष्टसे विचलित होनेपर कृतिकर्म पूरा नहीं हो सकता। जिस-किसी तरह आकुल चित्त से पूरा भी किया तो व्यर्थ ही कह जायेगा ॥ १२६ ॥

आगे मन्दबुद्धि जनोंको सरलतास ज्ञान करानेकेलिए कृतिकर्मकी क्रमविधी बतलाते हैं--

जो साधु या श्रावक मोक्षके उपायभूत रत्नत्रयकी एकाग्रतारूप समाधिकी प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें इस प्रकार कृतिकर्म करना चाहिए। सर्वप्रथम बैठकर पूज्य गुरु आदिसे

आवेद्य--चैत्यभक्तिकायोत्सर्गकरेम्यहमित्यादिरुपेण सप्रश्रयं विज्ञाप्य । आनम्य स्थितः-
शरीरावनति कृत्वा पुनरुद्धीभूतः सन्नित्यर्थः । आदित्यादि-आरम्भे समाप्तौ चावर्तत्रयानत्नरप्रयुक्तमेकं
शिरोमनं यत्रेत्यर्थः । उक्तभक्तिः-पठितवन्दनाकल्पः । आलोचयेत्-इच्छामि भंते चेइयभक्ति काउरसगो
कओ तस्सालोचैउ इत्यादी प्रसिद्धनिगड्मृच्चारयंस्तद्रर्भ मनसा विचिन्तयेत् । सर्वतः-सर्वासू भक्तिषु ॥
१२७ ॥

अथ सम्यक् षडावश्यकानुष्ठातुश्चिहयनिर्णयार्थमाह--

शृण्वन् हष्यति तत्कथा घनरव केक्रीव सूकैडतां

तद्गर्हेऽडःति तत्र यस्यति रसे वादीव नास्कन्दति ।

ब्रेधादीन् जिनवत्र वैद्यपतिवद् व्यत्येति कालकमं

निन्द्यं जातु कुलीनवत्र कुरुते कर्ता षडावश्यकम् ॥ १२८ ॥

तत्कथां-षडावश्यकवार्ताम् । मूकैडतां-मौनं बधिरत्व च । अडःति-गच्छति । तद्गर्हे-स्वयं न गर्हते
षडावश्यक नाप्यन्येन शृणोतीत्यर्थः । यस्यति-प्रयत्ततै । वादी-घातुवादी । जिनवत्-क्षीणकषायी यषा । कर्ता-
साधुत्वेन कुर्वाणः । उक्तं च--

तत्कथाश्रवणानन्दी निन्दाश्रवणवर्जनस् ।

अलुब्धत्वमनालस्यं निन्द्यकर्मव्यपोहनम् ॥

सविनय नमस्कारपूर्वक निवेदन करना चाहिए कि मैं चैत्यभक्ति कायोत्सर्गको करता हूँ । फिर खडे होकर आदि और अन्तमें तीन-तीन आवर्त और एक नमस्कारपूर्वक सामायिक दण्डकको पढ़े । अर्थात् सामायिक दण्डक प्रारम्भ करनेसे पहले तीन आवर्त पूर्वक एक नमस्कार करे और दण्डक-समाप्त होनेपर भी तीन आवर्तपूर्वक एक नमस्कार करे । फिर कायोत्सर्गपूर्वक पंचपरमेष्ठीका स्मरण करे । फिर सामायिक दण्डककी तरह ही अर्थात् आदिअन्तमें तीन-तीन आवर्त और एक नमस्कारपूर्वक थोस्सामि इत्यादी स्तवदण्डकको पढ़कर वन्दना पाठ करे । फिर बैठकर इच्छामि भंते चेइयमत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्स आलोचेअं, इत्यादी पढ़कर आलोचना करे ॥ १२७ ॥

सम्यक्रीतिसे छह आवश्यकोंको करनेवालेकेचिह्नोंको बतलाते हैं--

जैसे मयुर मेघके शब्दको सुनकर नाचने लगता है वैसे ही छह आवश्यकोंका पालक भी छह आवश्यकोंकी चर्चा-वार्ता सुनकर आनन्दित होता है । यदि कोई उनकी निन्दा करता है तो गूँगा-बहरा हो जाता है अर्थात् न तो वह स्वयं छह आवश्यकोंकी निन्दा करता है और यदि दूसरा कोई करता है तो उसे सुनता भी नहीं है । तथा जैसे धातुवादी पारेमें यत्नशील रहता है वैसे ही वह छह आवश्यकोंमें सावधान रहता है । तथा जैसे क्षीण कषाय, क्रोध आदि नहीं करता वैसे ही वह भी क्रोध आदि नहीं करता । तथा जैसे वैद्य रोगी और निरोगीके प्रति वैद्यक शास्त्रमें कहे गये काल और क्रमका उल्लंघन नहीं करता वैसे ही छह आवश्यकोंका पालक भी शास्त्रोक्त काल और विधिका उल्लंघन नहीं करता । तथा जैसे कुलीन पुरुष कभी भी निन्दनीय कार्य नहीं करता वैसे ही छह आवश्यकोंका पालक भी लोक और आगमकेविरुद्ध कार्य नहीं करता ॥ १२८ ॥

अथ संपूर्णतरषडावश्यकसम्यग्विधाने पूरुषस्य निःश्रेयसाभ्युदयप्राप्ति फलतयोपदिशति--

समाहितमना मौती विधायवाश्यकानि ना ।

संपूर्णानि शिवं याति सावशेषाणि दै दिवम् ॥ १२९ ॥

ना--द्रव्यतः पुमानेव । सावशेषाणि-कतिपयानि हीनानि च अशक्यत्यपेक्षयैतत् । यद्बृद्धाः--

जं सक्कड् तं कीरड् जं च ण सक्कड् तं च सदहणं ।

सदहमाणो जीवो पावड् अजरामरट्टाणं ॥ []

वे--नियमेन । उक्तं च--

सवैरावश्यकैर्युक्तौ सिद्धि भवति निश्चितम् ।

सावशेषैस्तु संयुक्तो नियमात् स्वर्गगी भवेत् ॥ [] ॥ १२९ ॥

अथ षडावश्यककिया द्रव सामान्या अपि क्रिया नित्यं साधना कार्या इत्युपदिशति--

आवश्यकानि षट् पत्र परमेष्टिनमस्क्रियाः ।

निःसही चासही साधोः क्रिया : कृत्यास्त्रयोदश ॥ १३० ॥

स्पष्टम् ॥ १३० ॥

अथ भावती अर्हदादिनमस्कारपत्रकस्य फलमाह--

योऽहैत्सिद्धाचर्याध्यापकसाधून् नमस्करीत्यर्थात् ।

प्रयतमतिः खलू सोऽखिलदुःखविमोक्षं प्रयात्यचिरात् ॥ १३१ ॥

स्पष्टम् ॥ १३१ ॥

अथ निसहासहौप्रयोगविधिमाह--

वसत्यादौ विशेत् तत्स्थं भूतादि निसहीगिरा ।

आपृच्छ्य तस्मान्निर्गच्छेत् चापृच्छ्यासहीगिरा ॥ १३२ ॥

आपृच्छ्य-संवाद्य । उक्तं च--

वसत्यादिस्थभूतादिमापृच्छ्य निसहीगिरा ।

वसत्यादौ विशेत्तस्मान्निर्गच्छेत् सोऽसहीगिरा ॥ [] ॥ १३२ ॥

आगे सम्पूर्ण छह आवश्यकोंका सम्यक् पालन करनेवालेकी मोक्षकी और एकदेश पालन करनेवालेको अभ्युदयकी प्राप्तिरूप फल बतलाते हैं--

एकाग्रचित्त और मौनपूर्वक सामायिक आदि सम्पूर्ण आवश्यकोंका सम्यक् रीतिसे पालन करनेवाला पुरुष मोक्ष जाता है और अशक्त होनेके कारण कुछ ही आवश्यकोंका सम्यक् रीतिसे पालन करनेवाला महर्धिक कल्पवासी देव होता है ॥ १२९ ॥

आगे कहते हैं कि साधुको छह आवश्यक क्रियाओंकी तरह सामान्य क्रिया भी नित्य करनी चाहिए--
छह आवश्यक, पाँच परमेष्ठियोंको नमस्कार रूप पाँच, एक निःसही और एक आसही ये तेरह क्रियाएँ साधुको करनी चाहिए ॥ १३० ॥

भावपूर्वक अर्हन्त आदि पांचको नमस्कार करनेका फल बतलाते हैं--
जो प्रयत्नशील साधु या श्रावक अर्हन्त सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुको भावपूर्वक नमस्कार करता है वह शीघ्र ही चार गति सम्बन्धी सब दुःखोंसे छुट जाता है ॥ १३१ ॥

आगे निःसही और असहीकेप्रयोगकी विधी बतलाते हैं--

मठ, चैत्यालय, आदिमें रहनेवाले भूत, यक्ष आदिको निःसही शब्दकेद्वारा पूछकर

अथ परमार्थती निसहयसहयौ लक्षयति--

आत्मन्यात्मासितो येन त्यक्त्वा वाऽऽशास्य भावतः ।

निसहयसहयौ स्तोऽन्यस्य तदुच्चारणमात्रकम् ॥ १३३ ॥

आसितः-स्थापितः । सितो वा बद्ध । अन्यस्य-बहिरात्मनः । आशावतश्च । उक्तं च--

स्वात्मनयात्मा सितो येन निषिद्धी वा कषायतः ।

निसहो भावतस्तस्य शब्दोऽयस्य हि केवलः ॥

आशां यस्त्यक्तवानं साधुरसही तस्य भावतः ।

त्यक्ताशा येन नो तस्य शब्दोच्चारि ही केवलः ॥ []

अथवा--

निषिद्धचित्ती यस्तस्य भावतोऽस्ति निषिद्धिका ।

अनिषिद्धस्य तु प्रायः शब्दतोऽस्ति निषिद्धिका ॥

आशया विप्रमुक्तस्य भावतोस्त्यासिका मता ।

आशया त्वावियुक्तस्य शब्द एवास्ति केवलम् ॥ [] ॥ १३३ ॥

अथ प्रकृतमूपसंहरन्नित्यनैमित्तिकृतिकर्मप्रयोगं नियमयवाह--

इत्यावश्यकनिर्युक्ता उपयुक्तो यथाश्रुतम् ।

प्रयुश्रीत नियोगेन नित्यनैमित्तिकक्रियाः ॥ १३४ ॥

आवश्यकनियुक्ती--आवश्यकतानां निरवशेषापय । यथाश्रुतं--कृतिकर्मशास्त्रस्य गुरुपर्वक्रमायातोप-देशस्य चानतिक्रमेण । नियोगेन-नियमेन । नित्येत्यादि-नित्यक्रियाश्च नैमित्तिकक्रियाश्चेति विगुहय प्रथमक्रियाशब्दस्य गतार्थत्वादप्रयोगः । इति भद्रम् ॥ १३४ ॥

इत्याशाधरदृष्ट्यायां धर्माभृतपत्रिकायां ज्ञानदीपिकापरसंज्ञायामष्टमोऽध्यायः ।

अत्राध्याये ग्रन्थप्रमाणं पत्रसप्तत्यधिकनि षट्शतानि । अंकतः ६७५ ।

प्रवेश करना चाहिए और आसही शब्दकेद्वारा उससे पूछकर ही वहाँसे बाहर जाना चाहिए ॥ १३२ ॥

आगे परमार्थ दृष्टीसे निसही और आसहीका अर्थ बतलाते हैं--

जिस साधुने अपने आत्माको अपने आत्मामें ही सथापित किया है उसकेनिश्चय-नयसे निसही है । तथा जिसने इस लोक आदिकी अथभलाषाओंको त्याग दिया है उसकेनिश्चयनयसे आसही है । किन्तु जो बहिरात्मा है और जिन्हें इस लोक आदि सम्बन्धी आशाओंने घेरा हुआ है उनका निसही और आसही कहना तो शब्दका उच्चारण मात्र करना है ॥ १३३ ॥

अन्तमें प्रकृत विषयका उपसंहार करते हुए साधुओंको नित्य और नैमित्तिक कृतिकर्मको करनेकी प्रेरणा करते हैं--

उक्त प्रकारसे आवश्यकोंके सम्पूर्ण उपयोगमें सावधान साधुको कृतिकर्मका कथन करनेवाले शास्त्र तथा गुरुपरम्परसे प्राप्त उपदेशके अनुसार नियमसे नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंको करना चाहिए ॥ १३४ ॥

इस प्रकार आशाघर विरचित स्वोपज्ञ धर्माभृतके अन्तर्गत अनगारधर्माभृतकी भव्यकुमुदचन्द्रिका-

टीका तथा ज्ञानदीपिका पंजिका अनुसारिणी हिन्दी टीकामें आवश्यक--

नियुक्त नामक अष्टम अध्याय समाप्त हुआ ।

नवम अध्याय

अथ चतुश्चत्वारिंशता पद्यैर्नित्याक्रियाप्रयोगविधी मुनिमुद्यमयत्राह--

शुद्धस्वात्मोपलम्भाग्रसाधनाय समाधये ।

परिकर्म मुनिः कुर्यात् स्वाध्यायादिकमन्वहम् ॥ १ ॥

परिकर्म--योग्यतोत्पादनाय प्राग्धिवपेयमनुष्ठानम् ॥ १ ॥

अथ स्वाध्यायप्रतिष्ठापननिष्ठापनयोविधिमुपदिशति--

स्वाध्यायं लघुभक्त्यात्तं श्रुतसुर्योहरर्निशे ।

पूर्वेऽपरेऽपि चाराध्य श्रुतस्यैव क्षमापयेत् ॥ २ ॥

लघुभक्त्या--लघ्वी अत्रलिकामात्रपाश्टरुपा भक्तिर्वन्दना । सा च श्रुतस्य यथा--अर्हद्वक्तृप्रसूतम्
इत्यादिका । एवमाचार्यादीनशमपि यथाव्यवहारमसाववसेया । आत्तं--गृहितं प्रतिष्ठापितमित्यर्थः ।
अहर्निशे-दिने रात्रौ च । पूर्वेऽपरेऽपि--पूर्वाहयऽपराहे पूर्वरात्रेपररात्रे चेत्यर्थः । एतेन
गोसर्गिकापराहिकप्रदोषिक-वैरात्रिकाश्चत्वरः स्वाध्याया इत्युक्तं स्यात् । यथाह--

एकः प्रादोषिको रात्रौ द्वौ च गोसर्गिकस्तथा ।

स्वाध्यायाः साधुभिः सौद्वैः कर्तव्याः सन्त्यन्द्रितैः । []

आगे चवालीस श्लोकोंसे द्वारा मुनियोंको नित्य क्रियाकेपालनकी विधिमें उत्याहित करते हैं--

निर्मल निज चिद्रपकी प्राप्तिका प्रधान कारण समाधि है । उस समाधिके लिए योग्यता प्राप्त करनेको मुनको प्रतिदिन स्वाध्याय आदि करना चाहिए ॥ १ ॥

विशेषार्थ--संसारका परित्याग करके मुनित्याग धारण करनेका एकामात्र उद्देश शुद्ध स्वात्माकी उपलब्धि है उसे ही मोक्ष कहते हैं । कहा भी है--सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः । किन्तु उस निर्मल चिद्रपकी प्राप्तिका प्रधान कारण है समाधि । समाधी कहते हैं आत्मस्वरूपमें आपनी चित्तवृत्तिका निरोध । उसे योग और ध्यान भी कहते हैं । सब ओरसे मनको इटाकर स्वरूपमें लगाये विना सच्चा ध्यान सम्भव नहीं है और उससके बिना स्वरूपकी प्राप्ति सम्भव नहीं है । किन्तु वैसा ध्यान अभ्याससे ही सम्भव है । उस प्रकारका ध्यान करनेकी योग्यता लानेके लिए पहले कुछ आवश्यक कार्य करने होते हैं । उन्हींको कहते हैं ॥ १ ॥

सबको प्रथम स्वाध्यायकेप्रारम्भ और समापनकी विधि कहते हैं--

स्वाध्यायका प्रारम्भ दिन और रात्रिके पूर्वभाग और अपरभागमें लघु श्रुत भक्ति और लघु आचार्य भक्तिका पाठ करके करना चाहिए । और विधिपूर्वक करके लघु श्रुत भक्तिपूर्वक समाप्त करना चाहिए ॥ २ ॥

-भिः सर्वे क--भ. कु. च. ।

प्रदोषः प्रत्सासन्नकालः । प्रदोषोऽपराहयस्तत्र भवः प्रादोषिक अपराहिक हत्यथः ।

आराध्य--विधिवद्विधायक्षमापयेत्-लघ्व्या श्रुतभक्त्यश निष्ठापयोदित्यर्थः ॥ २ ॥

अथ स्वाध्यायानां ग्रहण-क्षमापण-कालेयत्तानिरूपणार्थमाह--

ग्राहयः प्रगे द्विघटिकादूर्ध्वं स प्राक्ततश्च मध्याहये ।

क्षम्योऽपराहयपूर्वपररात्रेष्वपि दिगेषैव ॥ ३ ॥

ग्राहयः--प्रतिष्ठाप्यः । प्रगे--प्रभाते । द्विघटिकात-द्वयोर्घटिकयोः समाहारो द्विघटिकं तस्मात् । प्राक्ततः-घटिकाद्वयात् पूर्वखं घटिकाद्वयोने मध्याहये सम्पन्ने सतीत्यर्थः । अपराहय त्यादि - अपराहये घटिका-द्वयाधिकमध्याहयदूर्ध्वं प्रतिष्ठापयो घटिकाद्वयशेषे दिनान्ते निष्ठाप्यः । तथा घटिकाधिके प्रदोषे ग्राहयो घटिका-द्वयोनेऽर्घरात्रे निष्ठाप्यः । तथा घटिकाद्वयाधिकेऽर्घरात्रे ग्राहयो द्विघटिकावशेषे निशान्ते क्षम्य इत्यर्थः ॥ ३ ॥

अथ स्वाध्यायं लक्षयित्वां विधिवत्तद्विधानस्य फलमाह--

सूत्रं गणधराद्युक्तं श्रुतं तद्वाचनादयः ।

स्वाध्यायः स कृतः काले मूवत्यै द्रव्याविशुद्धितः ॥ ४ ॥

सूत्रमित्यादि । उक्तं च--

सुत्तं गणहरकथिदं तहेव पत्तयबुद्धकथिदं च ।

सुदकेत्रलिणा कथिदं अभिन्नदसपुविकथिदं च ॥

तं पढिदुमसज्झाए ण्का य कप्पदि विरदि इत्थिवग्गस्स ।

एत्तो अण्णो गंथो कप्पदि पढिदुं असज्झाए ॥

आराधणणिज्जुत्ती मरणविभत्ती असग्गहत्थदीओ ।

पच्चक्खाणावासय धम्मकहाओ य एरिसओ ॥ [मूलाचार गो. २७७-२७९]

विशेषार्थ--आगममें स्वाध्यायके चार समय माने हैं--पूर्वाहय, अपराहय, पूर्व रात्रि और अपररात्रि । इन चार कालोंमें साधुको आलस्य त्यागकर स्वाध्याय करना चाहिए । स्वाध्यायके प्रारम्भमें लघु श्रुत भक्ति और लघु आचार्य भक्ति करना चाहिए । और समाप्तिपर लघु श्रुतभक्ति पढ़ना चाहिए ॥ २ ॥

आगे स्वाध्याय के प्रारम्भ और समाप्तिके कालको प्रमाण बताते हैं--

प्रातःकाल सूर्योदयसे दो घड़ी दिन चढ़नेपर स्वाध्याय प्रारम्भ करना चाहिए अर्थात् तीसरी घड़ी शुरू होनेपर स्वाध्याय शुरू करना चाहिए और मध्याहयमें दो घड़ी काल शेष रहनेपर समाप्त कर देना चाहिए । यही उपदेश अपराह, पूर्वरात्रि और अपररात्रिके भी सम्बन्धमें जानना । अर्थात् अपराहयमें मध्याहसे दो घड़ी बीतनेपर स्वाध्याय प्रारम्भ करना चाहिए और दिनकी समाप्तिमें दो घड़ी काल शेष रहनेपर समाप्त करना चाहिए । पूर्वरात्रिमें दिनकी समाप्तिसे दो घड़ी कयाल बीतनेपर स्वाध्यायच

प्रारम्भ करना चाहिए और अर्धरात्रिमें दो घड़ी काल शेष रहनेपर समाप्त करना चाहिए । अपररात्रिमें आधी रातसे दो घड़ी काल बीतनेपर स्वाध्याय प्रारम्भ करना चाहिए और रात्रि बीतनेमें दो घड़ी शेष रहनेपर समाप्त करना चाहिए ॥ ३ ॥

स्वाध्यायका लक्षण और विधिपूर्वक उसके करनेका फल कहते हैं--

गणधर आदिके द्वारा रचित शास्त्रको सूत्र कहते हैं । उसकी वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आमनाय और धर्मोपदेशको स्वाध्याय कहते हैं । योग्य कालमें द्रव्य आदिको शुद्धिपूर्वक की गयी स्वाध्याय कर्मक्षयपूर्वक मोक्षके लिए होती है ॥ ४ ॥

द्रव्यादिशुद्धितः--द्रव्यादिशुद्धया ह्यधीतं शास्त्र कर्मक्षयाय स्यादन्यथा कर्मबन्धयेति भावः ।

अत्रायमागमः--

दिसिदाह उक्त्वपडणं विज्जुव उक्काऽसणिंदधणुयं च ।

दुग्गंध संज्झदुदिण चंदगहा सुरराहु जुद्धं च ॥

कलहादिधुमकेदू धरणीकंमं च अब्भगज्जं च ।

इच्चेयमाइ बहुगा सज्झाए वज्जिदा दोसा ॥

रुधिरादिपूयमंसं द्रव्हे खेते सदहत्थपरिमाण ।

कोधादि संकिलेसा भावविसोही पढणकाले ॥ [मूलाचार गा. २७४-२७६]

द्रव्ये--आत्मशरीरे परशरीरे च । सदहत्थपरिमाणे--चतसृषु दिशु हस्तशतचतुष्टयमात्रेकण रुधिकादीनी वर्ज्यानीत्यर्थः ॥ ४ ॥

विशेषार्थ--मूलाचारमें स्वाध्यायके कालादिका वर्णन इस प्रकार किया है--किसी उत्पातसे जब दिशाएँ आके समान लालिमाको लिये हुए हों, आकाशसे उल्कापात हुआ हो, बिजली चमकती हो, वज्रपात हो, क ओले गिरते हो, इन्द्रधनुष उगा हो, दुर्गन्ध फैली हो, सन्ध्या हो, दुर्दिन--वर्षा होती हो, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण हो, कलह होता हो, कलह होता हो, भूचाल हो, मेघ गरजते हों, इत्यादी बहुत-से दोषोंमें स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । इस तरह कालशुद्धि होनेपर जो शास्त्र स्वाध्यायके योग्य हैं वे इस प्रकार हैं--सर्वज्ञके मुखसे अर्थ ग्रहण करके गौतम आदि गणधरोंके द्वारा रचित द्वादशांगको, प्रत्येक बुद्ध श्रुतकेवली तथा अभिन्न दस पूर्वियोंके द्वारा रचितको सूत्र कहते हैं । संयमी स्त्री-पुरुष अर्थात् मुनि और आर्थिकाओंको अस्वाध्यायकालमें नहीं पढ़ना चाहिए । इन सूत्र ग्रन्थोंके सिवाय जो अन्य आचार्यरचित ग्रन्थ है उन्हें अस्वाध्यायकालमें भी पढ़ सकते हैं । जैसे भगवती आराधना, जिसमें चारों आराधनाओका वर्णन है, सतरह, प्रकारके मरणका कथन करनेवाले ग्रन्थ संग्रहरूप पंचसंग्रह आदि ग्रन्थ स्तुतिरूप देवागत आदि स्तोत्र, आहार आदिका या सावद्य द्रव्योंके त्यागका कथन करनेवाले ग्रन्थ, सामायिक आदि छह आवश्यकोंके प्रतिपादक ग्रन्थ, धर्मकथावाले पुराण चरित आदि ग्रन्थ, या कार्तिकेयानुप्रक्षा जैसे ग्रन्थोंको अस्वाध्याय कालमें भी पढ़ सकते हैं । श्वेताम्बरीय आगमें, व्यवहारसूत्र स्थानां आदिमें भी स्वाध्याय और अस्वाध्यायके ये ही नियम विस्तारसे बतलाये हैं जिन्हे अभियान राजेन्द्रके सज्जाय और

अस्वाध्यायके ये ही नियम विस्तारसे बतलाये हैं जिन्हें अभियान राजेन्द्रके सज्जाय और असज्जाय शब्दोंमें देखा जा सकता है। यथा--णो कप्पइ णिग्गंथारण वा णिग्गंथीण वा चउहिं संझाहिं सज्जायं करेत्तए तं जहा--पढमाए, पच्छिमाए, मज्झणहे अद्वरत्तो । कप्पई णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा चउक्कालं सज्जायं करेत्तए-पूवणहे अवरणहे पओसे पओसे पच्चूसे । स्था. ४ ट. र २ उ. । अर्थात् निर्ग्रन्थो और निर्ग्रन्थियोंको चारों सम्भ्याओंमें स्वाध्याय नहीं करना चाहिए -प्रथम, आन्तिम, मयाह और अर्धरात्रि । तथा निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियोंको चार कालमें स्वाध्याय करना चाहिए -पूर्वाह, अपराह, प्रदोष और प्रत्यूष (प्रभात) ।

इसी तरह स्थानांग १० में वे दस अवस्थाएँ बतलायी हैं जिनमें स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । जैसे चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, उल्कापात, मेघगर्जन, बिजलीकी चमक आदिके समय । स्तुति, धर्मकथा आदिको सम्भ्याकालमें भी पढ़ सकते हैं । उत्तराध्ययन (२६/१२) में कहा है कि दिनके चार भाग करके प्रथममें स्वाध्याय दूसरेमें ध्यान, तीसरेमें भिक्षा चर्या और

अथ विनयाधीतश्रुतस्य महात्म्यमाह--

श्रुतं विनयतोऽधीतं प्रमादादपि विस्मृतम् ।

प्रेत्योपतिष्ठतेऽनूनमावहत्यपि केवलम् ॥ ५ ॥

प्रेत्य-भवान्तरे । उक्तं च--

विणएण सुदमधीदं जदि वि पमादेण होदि विस्सरिदं ।

तमुअवट्टदि परभवे केवलणाण च आवहदि ॥ [मूलाचार गा. २८६] ॥ ५ ॥

अथ तत्त्वावबोधदिसाधनं विज्ञानं जिनशासन एवास्तीत्युपदिशति--

तत्त्वबोधमनोरोधश्रेयोगरागात्मशुद्धयः ।

मैत्रीद्योतश्च येन स्युस्तज्ज्ञानं जिनशासने ॥ ६ ॥

श्रेयोरगः--श्रेयसि चारित्रेऽकनुरागः । आत्माशुद्धिः--आत्मनो जीवस्य शुद्धिः--रागाद्युच्छित्तिःपरिच्छित्तिश्च । तथा चावाग्नि--

जेण तच्चं विबुज्जेज्ज जेण चित्तं णिरुज्जदि ।

जेण अत्ता विसुज्जेज्ज तं णाण जिणसासणे ॥

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि ।

जेण मिर्त्तिं पभावेज्ज तं णाण जिणसासणे ॥ [मूलाचार गा. २६७-६८]

चौथेमें स्वाध्याय करे । इसी तरह रात्रिके चार भाग करके प्रथममें स्वाध्याय, दूसरेमें ध्यान, तीसरेमें शयन और चौथेमें स्वाध्याय करना चाहिए ॥ ४ ॥

विनयपूर्वक श्रुतके अध्ययन करनेका महात्म्य बताते हैं--

विनयपूर्वक पढ़ा हुआ श्रुत यदि ग्रमादवश विस्मृत भी हो जाता है तो भी जनमान्तर में पूराका पूरा उपस्थित हो जाता है और केवलज्ञानशको उत्पन्न करता है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ--श्रुतका विनयपूर्वक अध्ययन व्यर्थ नहीं जाता । यदि वह भूल भी जाये तो उसका संस्कार जन्मान्तर में भी रहता है । और श्रुतज्ञानकी भावना ही कयेवलज्ञानके रूपमें प्रकट होती है । उसकेबिना केवलज्ञान सम्भव नहीं है ॥ ५ ॥

आगे कहते हैं कि तत्त्वबोध आदिका साधन विज्ञान जिनशायसनमे ही है--

जिसके द्वारा तत्वका बोध, मनका रोध, कल्याणकारी चारित्रमें अनुराग आत्मशुद्धि और मैत्रीभावनाका प्रकाश होता है वह ज्ञानश् जिनशासनमें ही है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ-- तत्व तीन प्रकारका होता है--हेय, उपादेय, और उपेक्षणीय । हेयका-छोड़ने योग्यका हेय रूपसे, उपादेयका--ग्रहण करने योग्यका उपादेय रूपसे और उपेक्षा करने योग्यका उपेक्षणीय रूपसे होनेवाले बोधको तत्वबोध या तत्वज्ञान कहते हैं । मन जिस समय ज्यों ही विषयोंकी ओर जावे उसी समय उसे उधर जानेसे रोकनेको या उस विषयका ही त्याग कर देनेको मनोरोध कहते हैं । कहा भी है--

यद्यदेव मनसि स्थितं भवेत् तत्तदैव सहसा परित्यजेत् । अर्थात् जैसे ही जो विषय मनमें घुले उसे तत्काल छोड़ दे । ज्ञानकेबाद जीवका कल्याणकारी है ज्ञानको आचारण केरूपमें उतारना । उसे ही चारित्र कहते हैं । उस कल्याणकारी चारित्रमे अनुरागको अर्थात् तन्मय हो जानेको श्रेयोगरा कहते हैं । जिसमें मैं इस प्रकारका अनुपचरित प्रत्यय होता है वही आत्म है । उस आत्मासे रागादिदको दूर करना आत्मशुद्धि है । मित्रके भावको मैत्री कहते हैं अर्थात् दूसरों को किसी भी प्रकारका दुःख न हो ऐसी भावनश मैत्री है । उस मैत्रीका

अथ पूर्वसूत्रेण सम्यक्त्वसहचारि ज्ञानमुक्तरसूत्रेण च चारित्रसहचारिज्ञानं सूत्रकारेणोपवणितमवसेयम् ॥ ६ ॥

अथ साधोरपरारात्रे स्वाध्यायप्रतिष्ठापननिष्ठापनश्च प्रतिक्रमणविधानं रात्रियोगनिष्ठापनं च यथाक्रमं भवश्यकर्तव्यतयोपदिशति--

क्लमं नियम्य क्षणयोगनिद्रया

लातं निशीथे घटिकाद्वयाधिके।

स्वाध्यायमत्यस्य निशाद्विनाडिका-

शेषे प्रतिक्रम्य च योगमृत्सृजेत् ॥ ७ ॥

क्लमं--शरीयरग्लानिम् । नियम्य-निवर्त्य । क्षणयोगनिद्रया-योगः शुद्धिदूषे यथाशक्ति चिन्तानिरोधः । योगो निद्रेव इन्द्रियात्ममनोमरत्सूक्ष्मावस्थारूपवात् । योगश्चासौ निद्रा च योगनिद्रा । क्षणोऽत्र कालाल्पत्वम् । तच्चौत्कर्षतो घटिकाचतुष्टयमस्वाध्याययोग्यम् । क्षणभाविनी योगनिद्रा क्षणयोगनिद्रा तथा ।

यद्राहुः-

यमनियमनितान्त : शान्तबाहयान्तरात्मा ।

परिणमितसमाधिः सर्वसत्वानुकम्पी ।

विहितहितमिताशीः क्लेशजालं समूलं

दहति निहीतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥ [आत्मानृ. श्लो. २२५]

बुद्धिमानोंके चित्तमें महत्व प्रकट करना मैत्रीद्योत है । ये सब मभ्यग्ज्ञानके फल है । ऐसा सम्यग्ज्ञान जिनशायसनमें ही मिलता है । जिन अर्थात् बीतराग सर्वज्ञके द्वारा प्रतिपादित अनेकान्तात्मक मतमें उसीको विज्ञान कहते हैं जिसकी परिणति उक्त पाँच रूपमें होती है । मूलाचारमें कहा है --जिससे तत्वका--वस्तुकी यथार्थताका जानना होता है, जिससे मनका व्यापार रोका जाता है अर्थात् मनको अपने वशमें किया जाता है और जिससे आत्माको वीतराग बनाया जाता है वही ज्ञान जिनशासनमें प्रमाण है । जिसके द्वारा जीव राग, काम, क्रोध आदिसे विमुख होता है, जिससे अपने कल्याणमें लगता है और जिससे मैत्री भावसे प्रभावित होता है वही ज्ञान जिनशासनमें प्रमाण ॥ ६ ॥

आगे कहते हैं कि साधुको रात्रिको पिछले भागमें स्वाध्याकी स्थापना, फिर समाप्ति, फिर प्रतिक्रमण और अन्तमें रात्रियोगका निष्ठापन ये कार्य क्रमानुसार अवश्य करना चाहिए--

थोड़े समयकी योगनिद्रासे शारीरिक थकानको दूर करके अर्धरात्रिको बाद दो घड़ी बीतनेपर प्रारम्भ की गयी स्वाध्याको जब रात्रिको बीतनेमें दो घड़ी बाकी हों तो समाप्त करके प्रतिक्रमण करे, और उसकेबाद रात्रियोगको पूर्ण कर दे ॥ ७ ॥

विशेषार्थ--साधु प्रतिदिन रात्रिमे रात्रियोगको धारण करते हैं । और प्रातः होनेपर उसे समाप्त कर देते हैं । पं. आशाधरजीने अपनी टीकामें योगका अर्थ शुद्धोपयोग किया है । अर्थात् रात्रिमें उपयोगकी शुद्धताकेलिए साधु रात्रियोग धारण करते हैं । उस रात्रियोंगमे वे अधिकसे अधिक चार घड़ी सोते हैं जो स्वाध्यायके योग्य नहीं है । अर्थात् अर्धरात्रि होनेसे पहलेकी दो घड़ी और अर्धरात्रि होनेके बादकी दो घड़ी इन चार घटिकाओंमें साधु निद्रा लेकर अपनी थकान दूर करते हैं । उनकी इसक निद्रा को योगनिन्दा कहा है । योग कहते हैं शुद्ध चिद्रूपमें यथाशक्ति चिन्ताके निरोधको । निद्रा भी योगके तुल्य है क्योंकि निद्रामें

अपि च--

स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्तां ध्यानात् स्वाध्यायमामनेत् ।

ध्यानस्वाध्यायसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥ [तत्वानु. श्लो.]

एतदेव च स्वयमप्यन्वाख्यं सिद्धयतुःमहाकाव्ये, यथा--

परमसमयसाराभ्याससानन्दसर्पत्

सहजमहसि सायं स्वे स्वयं स्वं विदित्वा ।

पुनरुदयदविद्यावैभवाः प्राणचार-

स्फुरद्रुणविभूता योगिनो यं स्तुवन्ति ॥

लातं--गृहीतम् । निशीथे--अर्धरात्रे ॥ ७ ॥

अथ परमागमव्याख्यानाद्युपयोगस्य लोकोत्तरं महात्मयमुपवर्णयति--

खेद-संज्वर-संमोह-विक्षेपाः केन चेतसः ।

क्षिप्येरन् मङ्क्षु जेनी चेन्नोपयुज्जेत गोः सुधा ॥ ८ ॥

संज्वरः-संतापः । बाहया अप्याहुः--

क्लान्तमपोज्जति खेदं तप्तं निर्वाति बुध्यते मूढस् ।

स्थिरतामेति व्याकुलमुपयुक्तसुभाषितं चेतः ॥ [] ॥ ८ ॥

अथ प्रतिक्रमणमाहात्म्यमनुसंधत्तं--

इन्द्रिय, आत्मा, मन और श्वास सूक्ष्म अवस्था रूप हो जाते हैं । निद्राका यही लक्षण कहा है--
इन्द्रियात्ममनोरुतरं सूक्ष्मावस्था स्वापः । शयनसे उठते ही साधू स्वाध्यायमें लग जाते हैं और जब दो
घड़यी रात बाकी रहती हैं तो स्वाध्याय समाप्त करके किये दोषोकी विशुद्धिके लिए प्रतिक्रमण करते हैं ।
उसके बाद रात्रियोग समाप्त करते हैं । आचार्य गुणभद्रने इसका वर्णन करते हुए लिखा है-जो यम और
नियममें तत्पर रहते हैं, जिनकी आत्मा बाह्य विषयोंसे निवृत्त हो चुकी है, जो निश्चल ध्यानमें निमग्न
रहते हैं, सब प्राणियोंके पति दयालू हैं, आगममें विहित हित और मित भोजन करते हैं, अतएव जिन्होंने
निद्राको दूर भगा दिया है, और जिन्होंने अध्यात्मके सार शुद्ध आत्मस्वरूपका अनुभव किया है, ऐसे मुनि
कष्ट समूहको जड़मूल सहित नष्ट कर देते हैं--

पूज्य रामसेनजीने भी कहा है--मूनिको स्वाध्यायसे ध्यानका अभ्यास करना चाहिए और ध्यासे
स्वाध्यायको चरितार्थ करना चाहिए । ध्यान और स्वाध्यायकी प्राप्तिसे परमात्मा प्रकाशित होता है अर्थात्
स्वाध्याय और ध्यान ये दोनों परस्पर में एक दूसरेके सहायक हैं और इन दोनोंके सहयोगसे शुद्ध आत्माकी
प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥

आगे परमागमके व्याख्यान आदिमें उपयोग लगानेका अलौकिक माहात्म्य कहते हैं--

यदि जिन भगवानकी वाणीरूपी अमृतरूपी अमृतका पान तत्काल न किया जाये तो चित्तका खेद,
सन्ताप, अज्ञान और व्याकुलता कैसे दूर हो सकते हैं? अर्थात् इनके दूर करनेका सफल उपाय
शास्त्रवाध्याय ही है ॥ ८ ॥

विजृम्भा यो-कु. च. ।

दुर्निवार-प्रमादारि-प्रयुक्ता दोषवाहिनी ।

प्रतिक्रमणदिव्यास्त्रप्रयोगादाशु नश्यति ॥ ९ ॥

उक्तं च--

जीवे प्रमाद जनीताः प्रचुना प्रदोषा यस्मात् प्रतिक्रमणतः प्रलयं प्रयान्ति ।

तस्मात्तदर्शममलं मुनिबोधनार्थं वक्ष्ये विचित्रश्वकर्मविशोधनार्थम् ॥ [] ॥ ९ ॥

अथ प्रमादस्य महिमानमृदाहरणद्वारेण स्पष्टयति--

त्र्यहादवैयाकरणः किलैकाहादकार्मुकी ।

क्षणादयोगी भवति स्वभ्यासोऽपि प्रमादतः ॥ १० ॥

किल-लोके होवं श्रूयते । आकार्मुकी-अधानुष्कः ॥ १० ॥

अथ प्रतिक्रमणाया रात्रियोग-निष्ठापनयोग्य प्रयोगविधिमभिघत्ते--

भक्त्या सिद्ध-प्रतिक्रान्तिवीरद्विदशार्हताम् ।

प्रतिकामेन्सलं योगं योगिभक्त्या भजेत् त्यजेत् ॥ ११ ॥

द्विदशार्हतः-चतुविंशतितीर्थकराः । योगं-अद्य रात्रावत्र वसत्यां स्थातव्यमिति नियमविशेषम् ।

भजेत्-प्रतिष्ठापयेत् । त्यजेत्-निष्ठापयेत् ।

उक्तं च--

दुर्निवारश्च प्रसादरूपी शत्रुसे प्रेरित अतीचारोंकी सेना प्रतिक्रमणरूपी दिव्य अस्त्रके प्रयोगसे शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ ९ ॥

विशेषार्थ--अच्छे कार्योंमें उत्साह न होनेकी प्रसाद कहते हैं । यह प्रसाद शत्रुके समान है क्योंकि जीवके स्वार्थ उसके कल्याणके घातक है । जब यह प्रमाद दुर्निवार हो जाता है, उसे दूर करना शक्य नहीं रहता तब इसीकी प्रेरणासे व्रतादिमें दोषोंकी बाढ़ आ जाती है -अतीचारोंकी सेना एकत्र हो जाती है । उसका संहार जिनदेवके द्वारा अर्पित प्रतिक्रमण रूपी अस्त्रसे ही हो सकता है । प्रतिक्रमण कहते ही हैं-लगे हुए दोषोंके दूर करनेको । कहा है-क्योंकि जीवमें प्रमादसे उत्पन्न हुए बहुतसे उत्कृष्ट दोष प्रतिक्रमणसे नष्ट हो जाते हैं । इसलिए मुनियोंके बोधके लिए और नाना प्रकारके सांसारिक कर्मोंकी शुद्धिके लिए प्रतिक्रमण कहा है ॥ ९ ॥

आगे उदाहरणके द्वारा प्रमाद की महिमा बतलाते हैं--

लोकमें ऐसी कहावत है कि प्रमाद करनेसे व्याकरणशास्त्रमें अच्छा अभ्यास करनेवाला भी वैयाकरण तीनदिनमें अवैयाकरण हो जाता है अर्थात् केवल तीन दिन व्याकरणका अभ्यास न करे तो सब भूल जाता है । एक दिनके अभ्यास न करनेसे धनुष चलानेमें निपुण धनुर्धारी नहीं रहता, और योगका अच्छा अभ्यासी योगी यदि प्रमाद करे तो एक ही क्षणमें योगीसे अयोगी हो जाता है ॥ १० ॥

आगे प्रतिक्रमण और रात्रियोगके स्थापन और समाप्तिकी विधि बतलाते हैं--

सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति और चौबीस तीर्थकरभक्ति के द्वारा अतीचारकी विशुद्धि करनी चाहिए। और मैं आज रात्रिमें इस बसतिकामें ठहरूँगा इस रात्रिकायोगको योगिभक्तिपूर्वक ही स्थापित करना चाहिए और योगिभक्तिपूर्वक ही समाप्त करना चाहिए ॥ ११ ॥

सिद्धनिषेधिकावीर - जिनभक्तिप्रतिक्रमे^६

योगिभक्तिः पुनः कार्या योगग्रहणमोक्षयोः []^६ ११

अथ साधून् प्राभातिकदेववन्दनां प्रति प्रोत्साहयन्नाह ---

योगिध्यानैगम्यः परमविशददृग्विश्वरूपः स तच्च

स्वान्तस्थेऽन्मैव साध्यं तदमलमतयस्तत्पथध्यानबीजम्^६

चित्तस्थैर्यं विधातुं तदनवधिगुणग्रामगाढानुरागं

तत्पमजाकर्म कर्मच्छिदुरमिति यथासूत्ररसूत्रयन्तु^६ १२

सः ---- परमागमप्रसिद्धः तद्यथा ---

घ्नेत्रलणाणदिवायरकिरण् लावप्पणसियणाणो^६

णवकेत्रललध्दुग्गम सुजणियपरमप्पववएसो^६

असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण^६

जुत्तो त्तिं सजोगिजिणो अणाइणिहणारिसे उत्तो^६ [गो.जी., गा. ६३-६४]

विशेषार्थ ---- प्रतिक्रमण सिद्धभक्ति आदि चार भक्तिपाठ पूर्वक किया जाता है और रात्रियेगधारण करते समय योगिभक्ति की जाती है^६ और समाप्ति भी योगिभक्तिपूर्वक कि जाती है^६ ११

आगे साधुओंको प्रातःकालीन देववन्दनकेलिए उत्साहित करते हैं ---

घजिसके अत्यन्त स्पष्ट केवलज्ञानमें लोक और अलोकके पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं, वह परमात्मा योंगियोंके एकमात्र योंगियोंके एकमात्र ध्यानके द्वारा ही प्राप्त हो सकता है^६ और योंगियोंका वह ध्यान चित्तकी स्वरिता के द्वारा ही साधा जा सकता है^६ इसलिए निर्मल बुद्धिवाले साधुजन परमात्मपदकी प्राप्तिके उपायभूत धर्मध्यान और शुक्लध्यानके बीजरूप चित्तकी स्थिरताको करनेके लिए जिनेन्द्रके अनन्त गुणोंके समूहमें दृढ भक्तिको लिये हुए आगमके अनुसार उस पूजा कर्मको इसलिए करें क्योंकि वह मन-वचन- कायकी क्रियाका निरोधक होनेसे ज्ञानावरण आदि कर्मोंका भी एकदेशसे छेदक होत है^६ ड

विशेषार्थ --- जिनेन्द्र भगवान्की वन्दनाको या विनयको ही पूजा कहते हैं^६ साधुण भावपूजा ही करते है^६ भावपूजाका लक्षण इस प्रकार है ---- घसमस्त आत्माओंमें पाये जानेवाले विशुद्ध जैन गुणोंका जिनेन्द्रदेवके गुणोंको अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिपूर्वक चिन्तन करनेको भावपमजा कहते है^६ १२

इस भावपूजाके द्वारा परमात्माके गुणोंका भक्तिपूर्वक चिन्तन करलेसे मन- वचन- कायकी क्रियाका निरोध होनेके साथ चित्त स्क्रि होता है और चित्तकेस्थिर स्थिर होनेसे ही साधु उस धर्मध्यान और शुक्लध्यानको करनेमें समर्थ होता है जिस एकत्ववर्तिक अवीचार शुक्लध्यानके द्वारा परमात्माका ध्यान करते हुए स्वयं परमात्मा बन जाता है^६ उस परमात्माका स्वरूप इस प्रकार कहा है ---- केवलज्ञानरूपी सूर्यकी किरणोंके समूहसे जिनका अज्ञानभाव पूरी तरह नष्ट हो गया है, और नौ केवललब्धियोंके प्रकट होनेसे जिन्हें घरमात्माङ्क नाम प्राप्त हो गया है^६ उनका ज्ञान और दर्शन आत्माके सिवाय इन्द्रिय आदि किसी भी अन्यकी

यापकानां विशुद्धनां जैनानामनुरागतः^६

गुणांनां यदनुध्यानं भावपूजेयमुच्यते^६ []

तच्च --- योगिध्यानम्^६ स्वान्तस्थेम्ना --- मनःस्थैर्येण^६ यथाह ---

ध्यानस्य च पुनर्मुख्यो हेतुरेतच्चतुष्टयम्^६

गुरुपदेशः श्रद्धानं सदाभ्यासः स्थिरं मनः" [तत्वानु. श्लो. २१८]

अति च ---

याद्विद्विमानं भुवनान्तराले धर्तुं न शक्यं मनुजामरेन्द्रैः^६

तन्मानसं यो विदधाति वश्यं ध्यानं स धीरो विदधाति वश्यम्^६ []

तत्पथः--- परमात्माप्राप्त्युपायभूतम्^६ तत्पूजाकर्म --- जिनेन्द्रवन्दनाम्^६ कर्मछिदुरं --- कर्मणा इ
ानावरणादीनां मनोवाक्कायक्रियाणां वा छिदुरं छेदनशीलमेकदेशेन तदपनुत्त्वात्^६ आसूत्रयन्तु रचयन्तु^६
१२^६

अथ त्रैकालिकदेववन्दनायाः प्रयोगविधिमाह ---

त्रिसंध्य वन्दने युञ्ज्याच्चैत्यपञ्चगुरुस्तुती^६

प्रियभक्तिं बृहद्भक्तिष्वन्ते दोषविशुद्धसे^६१३

त्रिसन्ध्यमित्यादि^६ यत्पुनर्वुद्धपरम्परा व्यवहारोपलभ्यात् सिद्धचैत्यपञ्चगुरुशान्तिभक्तिभिर्यथावसरं
भगवन्तं वन्दमाना सुविहिताचारा अपि दृश्यन्ते तत्केवलं भक्तिपिशाचीदुर्ललितमिव मन्यामहे
सूत्रातिवर्तनात्^६ सूत्रे हि पूजाभिषेकमङ्गल एव तच्चतुष्टयमिष्टम्^६ तथा चोक्तम् ---

ध्वैत्यपञ्चगुरुस्तुत्या नित्या सन्ध्यासु वन्दना^६

सिद्धभक्त्यादिशान्त्यन्ता पूजाभिषेकमङ्गले" []

सहायतासे रहित है इसलिए वे केवली कहे जाते हैं और योगसे युक्त होनेसे सयोगी कहे जाते हैं
इस तरह अनादिनिधन आगममें उन्हें सयोगिजिन कहा है ६

साधुगण इन्हीं परमात्माके अनन्त ज्ञानादि गुणोंकी भक्तिपूर्वक प्रातःकाल वन्दना करते हैं ६ इस वन्दनाके द्वारा वे अपने मन- वचन- कायको स्थिर करके अपने चित्तको ध्यानके योग्य बनाते हैं और फिर ध्यानके द्वारा स्वयं परमात्मा बन जाते हैं ६ अतः साधुओको भी नित्य देववन्दना --- भावपूजा अवश्य करनी चाहिए ६ द्रव्यपूजामें आरम्भ होता है वह उनके लिए निषिद्ध है ६ उनका तो मुख्य कार्य स्वाध्याय और ध्यान ही है ६ स्वाध्यायसे प्राप्ति कहते हैं ६ यही समाधि साधुकी साधनाका लक्ष्य होती है ६ इसी समाधिसे उसे वह सब प्राप्त हो सकता है जो वह प्राप्त करना चाहता है ६ १२

त्रैकालिक देव वन्दनाकी विधि कहते हैं ---

देववन्दना करते हुए साधुको तीनों सन्ध्याओमें चैत्यवन्दना और पंचगुरुवन्दना करनी चाहिए ६ और वन्दनासम्बन्धी दोषोंकी या रागादि दोषोंकी विशुद्धीके लिए वन्दनाके अन्तमें बृहत् भक्तियोंमें से समाधिभक्ति करनी चाहिए ६ १३

विशेषार्थ ---- पं आशाधरजीने अपनी टीकामें लिखा है कि आचारशास्त्राके अनुसार आचारका पालन करनेवाला सुविहिताचारी मुनि भी वृदपरम्पराके व्यवहारमें पाया जानेसे भगवान्की वन्दना करे समय सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्तिपूर्वक वन्दना करते हुए देखे जाते हैं इसे हम भक्तिरूपी पिशाचीका दुर्विलास ही मानते हैं

ज्ञानमेव स्थिरभूतं ध्यानमित्युच्यते बुधे ६

ध्यानमेव स्थिरभूतं समाधिरिति कथ्यते ६ []

अपि च ---

जिणदेववन्दनाए चेदियभत्तीय पंचगुरुभत्ती ६

तथा---

अहिंसेयवन्दनां सिद्धचेदिय पंचगुरु संति भत्तीहिं ६

प्रियभक्तिं --- समाधि भक्तिं ६ दोषाः --- वन्दनातिचारा रागादयो वा ६

उक्तं च ---

ऊनाधिक्याविशुद्धर्थं सर्वत्र प्रियभक्तिकाः ६ १३

अथ कृतिकर्मणः षड्विधत्वमाचष्टे ---

स्वाधीनता परीतिस्त्रयी निषद्या त्रिवारमावर्ताः ६

द्वादश चत्वारि शिरांस्येवं कृतिकर्म षोडशम् ६ १४

परीतिस्त्रयी --- प्रदक्षिणास्तियी निषद्या --- आवृत्या त्रीण्युपवेशानानि क्रियाविज्ञानापनाचैत्यभक्तिपञ्चगुरुभक्त्यनन्तरालोचनाविष्याणि ६ त्रिवारं --- चैत्यचञ्चगुरुसमाधिभक्तिषु

त्रिःकायोत्सर्गविधानात्^६ शिरांसि --- मूधविनतयो वन्दना प्रधानभूतां वा अर्हत्सिध्दसाधुधर्माः^७ उक्तं च सिध्दान्तसूत्रे ---

आदाहिणंपदाहिणं तिक्खुत्तं तिऊणदं चदुस्सिरं^८
बारसावत्तं चेदि"^९[षड्खण्डा. पु.१३, पृ.८८]^{१०}

क्योंकि इससे आगमकी मर्यादाका अतिक्रमण होता है^६ आगममे पूजा और अभिषेकमंगलके समय ही ये चारों भक्तियाँ कही हैं --- छजो तीनां सन्ध्याओंमें नित्य देववन्दना की जाती है वह चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्तिपूर्वक की जाती है^७ किन्तु पूजा और अभिषेकमंगलमें सिध्दभक्तिसे लेकर शान्तिभक्ति पर्यन्त चार भक्तियाँ की जाती हैं^८ और भी कहा है --- छजिनदेवकी वन्दनामें चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति की जाती है^९ तथा अभिषेक वन्दना, सिध्दभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्तिपूर्वक होती है^{१०}

इससे प्रकट होता है कि पं. आशाधरजीके समयमें शास्त्रानुकूल आचारका पालन करनेवाले ऐसे भी मुनि थे जो देववन्दनामें चार भक्तियाँ करते थे^६ इसे पं. आशाधरजीने भक्तिरूपी पिशाचीका दुर्विलास कहा है^७ आजके कुछ मुनियोंमें तो ये दुर्विलास और भी बढ गया है, वे प्रतिदिन पंचामृताभिषेक कराते हैं^८ ऊपर जो पूजा अभिषेकमें चार भक्ति कही हैं वे श्रावकोंकी दृष्टिसे कही हैं^९ श्रावकोंका कृतिकर्म मुनियोंसे सर्वथा भिन्न नहीं था चारित्रसारमें कहा है --- ऊपर जो क्रिया कही है उन्हें यथायोग्य जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट श्रावकोंको और मुनियोंको करनी चाहिए^{१०} शास्त्रविहीत कृतिकर्म त्यागियोंमें भी विस्मृत हो चूका है^{११} पूजाके अन्तमें विसर्जनके नामसे जो शान्तिपाठ पढा जाता है यह शान्तिभक्ति ही है^{१२}

कृतिकर्मके छह भेद कहते हैं ---

पूर्वाचार्योंने छह प्रकारका कृतिकर्म माना है --- स्वाधीनता, परिति --- प्रदक्षिणा तीन, तीन, निषद्या, बारह आवर्त, और शिरोनति^{१३}

विशेषार्थ --- वन्दना कानेवाला स्वाधीनता होना चाहिए^{१४} वन्दनामें तीन प्रदक्षिणा तथा तीन निषद्या अर्थात् बैठना तीन बार होता है^{१५} क्रिया विज्ञापनके अनन्तर, चैतयभक्तिके

घवमुक्ताः क्रिया यथायोग्यं जघन्यमध्यमोत्तश्रावकैः संयतैश्च करणीयाः^{१६}

अथ

जिनचैत्यवन्दनायाः

प्रचरण्यास्त्रवणपूर्वपुण्योदयस्फारीकराप्राक्तनपापविपाकापकर्षणापूर्वपातक- संवरणलक्षणां फलचतुष्टयीं प्रतिपाद्य सर्वदा तत्र त्रिसन्ध्यं मुमुक्षुवर्गमुद्यमयन्नाह ---

दृष्ट्वार्हतप्रतिमां तदाकृतिमरं स्मृत्वा स्मरंस्तद्गुणान्
रागोच्छेदपुरःसरानतिरसात् पुण्यं चिनोत्युच्चकैर्
तत्पाकं प्रथमत्यघं क्रशयते पाकाद् रुणध्दयाश्रवत्

तदाकृति --- अर्हन्मूर्तिमं तल्लक्षणं यथा ---

धृष्टस्फटिकसंकाशं तेजोमूर्तिमयं वपुः
जायते क्षीणदोषस्य सप्तधातुविवर्जितम्" []

अरं --- झिटितं अर्हत्प्रतिमादर्शनान्तरमेव स्तरन्नित्यादि उक्तं च ---

वपुरेव तवाचष्टे भगवन् वीतरागताम्
न हि कोटरसंस्थेऽग्नौ तरुर्भवति शाद्वलः []

अघमित्यादि --- पापपाकमल्पीकरोतीत्यर्थः १ रुणध्वस्त्रवत् --- पापं संवृणोतीत्यर्थः २ पापं संवृणोतीत्यर्थः कल्मषमुषां --- घातिचतुष्टयलक्षणं स्वपापमहत्तवताम् बन्दारुभव्यजनानां वा दुष्कृतमपहरताम् १५

अनन्तर और पंच गुरु भक्तिके अनन्तर आलोचना करते समय बैठना होता है १ क्योंकि चैत्यभक्ति पंचगुरुभक्ति और समाधिभक्तिमें तीन कायोत्सर्ग किये जाते हैं २ तथा एक कृतिकर्ममें बारह आवर्त और चार शिरोनाति होती हैं ३ इनके सम्बन्धीमें पहले लिख आये हैं १४

आगे जिनचैत्यवन्दनाके चार फल बतलाकर उसमें सर्वदा तीनों सन्ध्याओको प्रवृत्त होनेका मुमुक्षु वर्गसक आग्रह करते हैं ---

अर्हत्की प्रतिमाको देखकर तत्काल अर्हन्तकी शरीराकृतिका स्मरण होता है १ उसके साथ ही भक्तिके उद्रेकसे अर्हन्त भगवान् के वीतरागता, सर्वज्ञता, हितोपदेशिता आदि गुणोंका स्मरण होता है २ उनके स्मरणसे सातावेदनीय आदि पुण्य प्रकृतियोंका बहुतायसे बन्ध होता है, जो पुण्य प्रकृतियाँ उदयमे आनेवाली हैं उनमें अनुभागकी वृद्धि होती है, बँधे हुए पापकर्मोंमें स्थिति अनुभागकी हानि होती है ३ नवीन पापबन्ध रुकता है ४ अतः जिन्होंने अपने चार घातिकर्त रूपी पापको दूर कर दिया है और जो वन्दना करनेवाले भव्य जीवोंकेभी पापको दूर करते हैं उन- उन अर्हन्तोंकी कृत्रिम अकृत्रिम प्रतिमाओंकी मन- वचन- कायकी शुद्धिपूर्वक नित्यवन्दना करनी चाहिए १५

विशेषार्थ --- जो चार घातिकर्मोंको नष्ट करके अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य रूप अनन्त चतुष्टसे सहित होते हैं उन्हें अर्हन्त कहते हैं १ अर्हन्तकी प्रतिमाको देखते ही सबसे प्रथम् साक्षात् अर्हन्तके शरीरका और फिर उनके आत्मिक गुणोंका स्मरण आता है और दर्शकका मन आनन्दसे गद्गद और शरीर रोमांचित होता है २ उसके मनकी ऐसी गुणानुराग दशा होनेसे चार कार्य उसकी अन्तरात्मामें होते हैं --- प्रथम उसके सातिशय पुण्यका बन्ध होता है, उदयमें आनेवाले पापके फलमें कमी होती है और पुण्यमें वृद्धि होती है, तथा नवीन पापकर्मोंका आस्त्रव नहीं होता ३ ऐसा होनेसे ही वन्दना करनेवालेके कष्टोंमें कमी होती है, सांसारिक सुखमें वखिध्द होती है, उसके मनोरथ पूर्ण हाते

हैं^१ इसे ही अज्ञानी कहते हैं कि भगवान् ने हमें यह दिया^१ किन्तु यदि वन्दना करनेवाला भावपूर्वक वन्दना नहीं करता तो उक्तं चारों कार्य न होनेसे मनोरथ सफल नहीं होते^१

अथ स्वाधीनतेत्यस्यार्थं व्यतिरेकमुखेन समर्थयते ---

नित्यं पारकवद्दीनः पराधीनस्तदोष न^१
क्रमते लौकिकऽप्यर्थे किमद्भ्र.स्मिन्नलौकिके^{१६}

नित्यमित्यादि^१ उक्तं च ---को नरकः परशवर्ता इति^१ क्रमते --- अप्रतिहतं प्रवर्तते उत्सहते वा
^१लौकिक --- लोकचिदिते स्नानभोजनादौ^१

यल्लोके---

परार्थानुष्ठाने श्लथयति नृपं स्वार्थपरता
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः^१
परार्थश्चेत् स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः^१ []

अद्भ्र. --- पुनः^१ अस्मिन् --- प्रकृते सर्वज्ञाराधने^{१६}

अथ चतुर्दशभः पद्यैर्देववन्दनादिक्रियाणां प्रयोगानुपूर्वीमुपदेष्टुकामः प्रथमं तावद् व्युत्थर्गान्तक्रम-
प्रकाशनाय पञ्चश्लोकीमाचष्टे ---

श्रुतदृष्टयात्मनि स्तुत्यं पश्यन् गत्वा जिनालयम्^१
कृतद्रवयादिशुद्धिस्तं प्रविश्य निसही गिरा^{१७}

श्रुतदृष्टय --- परमागमचक्षुर्षा आत्मानि --- विश्वरूपे स्वचिद्रूपे^१ स्तुत्यं--- भवरूपमर्हदादि^{१७}

चैत्यालोकोद्यदानन्दगलद्वाष्पस्त्रिरानतः^१
परीत्य दर्शनस्तोत्रं वन्दनामुद्रया पठन्^{१८}

तब अज्ञानी भगवान् को दोष देता है, अपनेको नहीं देखता^१ भगवान् तो वीतराग हैं न किसीको कुछ देते हैं न लेते हैं^१ नवे स्तुतिसे प्रसन्न होते हैं और निन्दासे नाराज^१ स्वामी समन्तभद्रने कहा है --- छे नाथ ! आप वीतराग हैं अतः आपको अपनी पूजासे प्रयोजन नहीं है^१ फिर भी आपके पवित्र गुणोका स्मरण हमारे चित्तको पापकी कालिमासक बचाव इसी लिए आपकी वन्दना करते हैं^{१५}

कृतिकर्मके प्रथम अंग स्वाधीनता व्यतिरेक मुखसे समर्थन करते हैं ---

पराधीन मनुष्य नारकीके समान सदा दीन रहता है^१ इसलिए वह लौकिक खान- पान आदि कार्योंकी तो बात ही क्या है ?^{१६}

आगे ग्रन्थकार चौदह श्लोकोंकेद्वारा देववन्दना आदि क्रियाओंको करनेका क्रम बतलाना चाहते हैं^१ अतः पहले पाँच श्लोकोंकेद्वारा व्युत्सर्ग पर्यन्त क्रियाओंका क्रम बतलाते हैं ---

आगमरूपी चक्षुसे अपने आत्मामें भावरूप अर्हन्त आदिका दर्शन करते हुए जिनालयको जावें वहाँ जाकर द्रव्य क्षेत्र काल भावकी शुद्धिपूर्वक निःसही शब्दका उच्चारण करते हुए प्रवेश करे^१ जिनबिम्बके दर्शनसे उत्पन्न हुए आनन्दसे हर्षकेआँसू बहाते हुए

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे^१

तथापि तव पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनात् चित्ते दुरिताञ्चनेभ्यः स्वयंभू. स्तोत्र., ५७ श्लो.

कृत्वेयपिथसंशुद्धिमालोच्यानम्रकाङ्क्षि घदो^१
नत्वोऽऽश्रित्य गुरोः कृत्यं पर्यक्डस्थोग्रमङ्गलम्^{१९}
उक्त्वाऽऽत्तसाम्यो विज्ञाप्य क्रियामुत्थाय विग्रहम्^१
प्रह्नीकृत्य त्रिभ्रमकशिरोविनतिपूर्वकम्^{२०}

दर्शनस्त्रोतं --- दर्शनक भगवदवलोकविषये दर्शनाय वा सम्यक्त्वाय दर्शनवध्दा सामान्यविषयात्वात्^१ स्तोत्रं --- स्तवनं घट्टं जिनेन्द्रभवनड इत्यादि सामान्यस्तवजजातम्^{१९} ईर्यापथसंशुद्धि --- ऐर्यापथिक - दोषविशुद्धिम्^१ घडिक्कमपिड इत्यादिदण्डकेन कृत्वा^१ आलोच्च --- इच्छामिड इत्यादिदण्डेन निन्दागर्हा- रुपामालोचनां कृत्वा^१ अनम्रकाङ्क्षिदोः--- समन्तात् साधुत्वेन मनन्मस्तकपादहस्तम् क्रियाविशेषणं चैतर्त् आश्रित्य गुरोः : कृत्यम् --- गुरोर्धर्माचार्यस्य तद् दूरे देवस्याप्यग्रे देववन्दनां प्रतिक्रमणादिकं वा कृत्यमाश्रित्यनमोऽस्तु देववन्दनां करिष्यामिड इत्यादिरुपेणाङ्गीकृत्यं अग्रमङ्गलं --- मुख्यमङ्गलं जिनेन्द्रगुणस्तोत्रं घसिध्दं सम्पूर्णभव्यार्थम्इत्यादिरुपम्^{१९} आत्तसाम्यः --- छ्वम्मासि सव्व जीवाणंइत्यादिसूत्रोच्चरणेन प्रतिपन्न- सामायिकः^{२०}

मुक्तशुक्त्याकिडतकरः पठित्वा साम्यदण्डकम्^१
कृत्यावर्तत्रयशिरोनती भूयस्तनुं त्यजेत्^{२१}

भूयं :--- पुनः, साम्यदण्डकपाठान्तेऽपीत्यर्थः^{२१}
अथ श्लोकद्वयेन व्युत्सर्गध्यानविधिमुपदिशति ---

जिनेन्द्रमुद्या गाथां ध्यायेत् प्रीतिविकस्वरे^१
हृत्पक्ड.जे प्रवेश्यार्निरुध्य मनसाऽनिलम्^{२२}

पृथग् द्विद्वयेकगाथांशचिन्तान्ते रेचयेच्छनैः^६

नवकृत्वः प्रयोत्कैत्रं दहत्यंहः सुधीर्महत्^{२३}

तीन बार नमस्कार करे और प्रदक्षिणा करे^६ फिर वन्दना मुद्रा पूर्वक जिनदर्शन सम्बन्धी कोई स्तोत्र पढ़े^६ फिर घण्डिककमामिड में प्रतिक्रमण करता हूँ इत्यादि दण्डकको पढकर ईर्यापथ शुद्धि करे अर्थात् मार्गमें चलनेसे जो जीवोकी विराधना हुई है उसकी शुद्धि करे, फिर घृच्छामिड इत्यादि दण्डकके द्वारा निन्दा गर्हारूप आलोचना करे^६ फिर मस्तक, दोनों हाथ, दोनों पैर इन पाँच अंगोको नम्र करके गुरुको नमस्कार उनकेआगे अपने कृत्यको स्वीकार करे कि भगवान् ! मैं देववन्दना करता हूँ या प्रतिक्रमण करता हूँ^६ यदि गुरु दूर हों तो जिनदेवके आगे उक्त कार्य स्वीकार करना चाहिए^६ फिर पर्यकासनसे बैठकर जिनेन्द्रके गुणोका स्तवन पढकर छत्रम्भाभि सव्व जीवाण्ड में सब जीवोको क्षमा करता हूँ इत्यादि पढकर साम्यभाव धारण करना चाहिए^६ फिर वन्दना क्रियाका ज्ञापन करके खडे होकर शरीरको नम्र करके दोनों हाथोकी मुत्काशुद्धि मुद्रा बनाकर तीन आवर्त और एक नमस्कार पूर्वक सामायिक दण्डक पढना चाहिए^६ सामायिक दण्डकके पाठ समाप्ति पर पुनः तीन आवर्त और एक नमस्कार (दोनों हाथ मुद्रापूर्वक मस्तकसे लगाकर) करना चाहिए^६ इसके बाद शरीरसे ममत्व त्याग रूप कायोत्सर्गमें करना चाहिए^६ १७-२१

आगे दो श्लोकोंकेद्वारा कायोत्यर्गमें ध्यानकी विधि बतलाते हैं ----

कायोत्सर्गमें आनन्दसे विकसनशील हृदयरूपी कमलमें मनके साथ प्राणवायुका प्रवेश कराकर और उसे वहाँ रोककर जिनमुद्राके द्वारा घणमोअरहंताण्ड इत्यादि गाथाका ध्यान करे^६ तथा गाथाके दो-दो और एक अंशका अलग- अलग चिन्तन करके अन्तमें

मनसा सहार्थे करणे वा तृतीया^{२२} द्वात्यादि --- गाथाया द्वावंशो घणमो अरहंताणं
णमोसिध्दाणमिडति^६ पुनर्द्वो घणमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणंइति^६ एकस्त्वंशो घणमो लोए
सव्वसाहूणंइति^६ यथाह ---

घशनैः शनैः मनोऽजस्त्रं वितन्द्रः सह वायुना^६

प्रविश्य हृदयाम्भोजे कर्णिकायां नियन्त्रयेत्^६

विकल्पा न प्रसूयन्ते विषयाशा निवर्तते^६

अन्तः स्फुरति विज्ञानं तत्र चित्ते स्थिरीकृते^६ [ज्ञानार्णव २६५०-५१]

घस्थिरीभवन्ति चेतांसि प्राणायामवलम्बिनाम्^६

जगद्धृत्तं च निःशेषं प्रत्यक्षमिव जायते" [ज्ञानार्णव २६५४]

घस्मरगरलमनोविजयं समस्तरोगक्षयं वपुः स्थैर्यम्^६

पवनप्रचारचतुरः करोति योगी न सन्देहः^६ []

अपि च ---

घटोपक्खभुआ दिट्ठी अंतमुही सिवसरुव संलीणा^६
मणपवणक्खविहूणा सहजावत्था स णायव्वा^६
जत्थ गया सा दिट्ठी तत्थ मणं तत्थ संठिय पवणं^६
मणवयणुभए सुन्नं तिहिं च जं फुरह तं ब्रम्ह" []२३

वायुको धीरे- धीरे बाहर निकाले^६ इस प्रकार अन्तर्दृष्टि संयमी नौ बार प्रणायाम करके बड़े-से- बड़े पापको भस्म कर देता है^६ २२-२३

विशेषार्थ ---- ध्यानकी सिद्धि और चित्तकी स्थिरताके लिए प्राणायाम प्रशंसनीय है^६ उसके तीन भेद हैं --- पूरक, कुम्भक और रोचक^६ तालुके छिद्रसे बारह अगुल तक श्वास द्वारा वायुको खींचकर शरीरके भीतर पूरण करनेको पूरक कहते हैं^६ उस पूरक पवनको नाभि- कमलमें स्थिर करके घड़ेकी तरह भरनेको कुम्भक कहते हैं^६ और उस रोकी हुई वायुको धीरे- धीरे बड़े यत्नसे बाहर निकालनेसे रोचक कहते हैं^६ पूरा णमोकार मन्त्र एक गाथा रूप है^६ उसके तीन अंश करके कायोत्सर्गके समय चिन्तन करना चाहिए^६ घणमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं के साथ प्राणवायुको अन्दर लेजाकर उसका चिन्तन करे और चिन्तनके अन्तमें वायु धीरे- धीरे बाहर निकाले^६ फिर घणमो आइरियाणंघणमो उवज्झायाणंके साथ प्राणवायुको अन्दर लेजाकर हृदय कमलमें इनका चिन्तन करे और चिन्तनके अन्तमें धीरे- धीरे वायुबाहर निकाले^६ फिर घणमो लोए सब्ब साहूणंके साथ प्राण वायु अन्दर ले जावे और चिन्तनके अन्तमें धीरे - धीरे बाहर निकाले^६ इस विधिसे २७ स्वासोच्छ्वासोंमें नौ बार नमस्कार मन्त्रका चिन्तन करनेसे पापका विध्वंस होत है^६ कहा भी है --- धनिरालसी ध्याताको धीरे - धीरे वायुके साथ मनको निनन्तर हृदय रूपी कमलकी कर्णिकामें प्रवेश कराकर रोकना चाहिए^६ वहाँ चित्त स्थिर होनेपर संकल्प- विकल्प उत्पन्न नहीं होते, विषयोंकी आशा दूर होती है और अन्तरंगमें ज्ञानका स्फुरण होता है^६ जो प्राणायाम करते हैं उनके चित्त स्थिर हो जाते हैं और समस्त जगत् का वृत्तान्त प्रत्यक्ष जैसा दीखता है^६ जो योगी वायुके संचारमें चतुर होत है अर्थात् प्राणायाममें निपुण होता है वह कामरूपी विष पर

--- णलए भ.कु.च^६

अथाशक्तान् प्रत्युपांश वाचनिकं पञ्चनमस्कारजपमनुज्ञाय तस्य मानसिकस्य च पुण्यप्रसूतावत्नरमभिधत्ते---

वाचाऽप्युपांशु व्युत्सर्गे कार्यो जप्यः स वाचिकः^६
पुण्यं शतगुणं चैतः सहस्रगुणमावहेत्^६ २४

वाचापि ---अपिशब्दोऽसक्तान् प्रत्यनुज्ञां द्योतयति^६ उपांशु --- यथाऽन्यो न शृणोति,
स्वसमक्षमेवेत्यर्थः^६

जप्यः --- सर्वे नसामपध्वंक्षी पञ्चनमस्कारजप इत्यर्थः^६ शतगुणं --- दण्डकोच्चारणादेः सकाशात्^६ यथाह--

ध्वचसा वा मनसा वा कार्यो जप्यः समाहितस्वान्तैः^६

शतगुणमाद्यै पुण्यं सहस्रगुणितं द्वितीये तु" [सोम. उपा., ६०२ श्लो]

पुनरप्याह ---

घविधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः^७

उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः [मनस्मृति २।८५]^८ २४

अथ पञ्चनमस्कारमाहात्म्यं श्रद्धानोद्दीपनार्थमनुवदति ---

अपराजितमन्त्रो वै सर्वविघ्नविनाशनः^९

मङ्ग.लेषु च सर्वेषु प्रथमं मङ्ग.ल मतः^{१०} २५

स्पष्टम्^{११} २५

मनके द्वारा विजय प्राप्त करता है, उसके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं, और शरीर स्थिर हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है^{१२-२३}

जो उक्त प्रकारसे पंचनमस्कारमन्त्रका ध्यान करनेमें असमर्थ है उन्हें वाचनिक जप करनेकी अनुज्ञा देते हुए दोनोंसे होने वाले पुण्यबन्धमें अन्तर बताते हैं ----

जो साधु उक्त प्राणायाम करनेमें असमर्थ है उन्हें कायोत्सर्गमें दूसरा न सुन सके इस प्रकार वचनके द्वारा भी पंच नमस्कारमन्त्रका जप करना चाहिए^{१३} किन्तु दण्डक आदिके पाठसे जितने पुण्यका संचय होता है उसकी अपेक्षा यद्यपि वाचिक जापसे सौगुणा पुण्य होता है तथापि मानसिक जप करनेसे हजार गुणा पुण्य होता है^{१४}

विशेषार्थ--- आचार्य सोमदेवने भी वाचनिक जपसे मानसिक जपका कई गुणा अधिक फल कहा है^{१५} यथा --- घस्थिरचित्तवालोंको वचनसे या मनसे जप करना चाहिए^{१६} किन्तु पहलेंमें सौगुणा पुण्य होता है तो दूसरोंमें हजार गुणा पुण्य होता है^{१७}

मनुमहाराजका भी यही मत है^{१८} यथा --- विधियज्ञसे जपयज्ञ दसगुणा विशिष्ट होता है^{१९} किन्तु जपयज्ञ भी यदि वचनसे किया जाये तो सौगुणा और मनसे किया जाये तो हजार गुणा विशिष्ट माना गया है^{२०}

आगे मुमुक्षुजनोंके श्रद्धानको बढानेकेलिए पंचनमस्कार मन्त्रका माहात्म्य बतलाते हैं ---

यह पंचनमस्कार मन्त्र स्पष्ट ही सब विघ्नोंको नष्ट करनेवाला है और सब मंगलोंमें मुख्य मंगल माना है^{२१}

विशेषार्थ --- मंगल शब्दके दो अर्थ होते हैं --- घमड मलको जो गालन करता है --- दूर करता है उसे मंगल कहते हैं । और मंग अर्थात् सुख और उसके कारण पुण्यको जो लता है उसी मंगल कहते हैं । ये दोनों अर्थ पंचनमस्कार मन्त्रमें घटित होते हैं । उससे पापका

अथैकैकस्यापि परमोष्ठिनो विनयकर्मणि लोकोत्तर महिमानमावेदयति ---

नेष्टं विहन्तुं शुथभावभग्नरसप्रकर्षः प्रभुरन्तरायः।

तत्कामचारेण गुणानुरागान्नुत्यादिरिष्टार्थकृदहदादेः॥२६॥

विनाश भी होता है और पुण्यका संचय भी होता है । कहा है--- यह पंचमनसकार सब पापोंको नाश करनेवाला है और सब मंगलोंमे मुख्य मंगल है ।

श्वेताम्बरीय लघु नवकार फलमें इसे जैन शासनका सार और चौदह पूर्वोका उद्धार कहा है--- जो जिनशासनका सार है और चौदह पूर्वोका उद्धार रूप है ऐसा नवकार मन्त्र जिसके मनमें है संसार उसका क्या कर सकता है ? और भी उसीमे कहा है --- यह काल अनादि है, जीव अनादि है, जिनधर्म अनादि है । तभीसे वे सब इस नमस्कार मन्त्रको पढते हैं । जो कोई भी कर्म फलसे मुक्त होकर मोक्षको गये, जाते है और जायेंगे, वे सब नमस्कार मन्त्रको प्रभावसे ही जानने चाहिए ॥२५॥

आगे एक-एक परमेष्ठीकी भी विनय करनेका अलौकिक माहात्म्य बतलाते है ---

अन्तराय कर्मकी इष्टको घातनेकी शक्ति जब शुभपरिणामोंकेद्वारा नष्ट कर दी जाती है तो वह वांछित वस्तुकी प्राप्तिमें विघ्न डालनेमे असमर्थ हो जाता है इसलिए गुणामे अनुरागवश कर्ताअपनी इच्छानुसार अर्हन्त, सिद्ध आदिका जो स्तवन, नमस्कार आदि करता है उससे इच्छित प्रयोजनकी सिद्धि होती है २६

विशेषार्थ --- जब अर्हन्त आदि स्तुतिसे प्रसन्न नहीं होते और निन्दासे नाराज नहीं होते तब उनके स्तवन आदि करनेसे मनुष्योके इच्छित कार्य कैसे पूरे हो जाते हो जाते है यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है उसीके समाधानके लिए कहते हैं कि मनुष्यके प्रयत्न करनेपर भी जो उसके मनोवांछित कार्य पूर्ण नहीं होते इसमें उस मनुष्यकेद्वारा पूर्वमें बाँधे गये अन्तराय कर्मका तीव्र अनुभागबन्ध रुकावट डालता है पंचपरमेष्ठीमें- से किसीके भी गुणोंमें श्रद्धा करके तीव्र अनुभागमें मन्दता आती है उसके कारण अन्तराय कर्मकी शक्ति क्षीण होनेसे कर्ताका मनोरथ पूर्ण हो जाता है नासमझ समझ लेते है कि भगवान् ने हमारा मनोरथ पूर्ण किया यदि कर्ताका अप्तराय कर्म तीव्र हो और कर्ता विशुद्ध भावोंसे आराधना न करे तो कार्यमें सफलता नहीं मिलती नासमझ इसका दोष भगवानको देते है और अपने परिधामोंको नहीं देखते ग्रन्थकार कहते है कि अर्हन्त आदिका स्तवन, पूजन आदि उनके गुणोंमें अनुरागवश ही किया जाना चाहिए तभी कार्यमें सफलता मिलती है केवल अपने मतलबसे स्तवन आदि करनेसे सच्चा लाभ नहीं होता २६

घजिणसासणस्स सारो चउदस पुब्बाण जो समुध्दरो

जस्समणे नक्करो संसारो तस्स किं कुणइ?

२. घएसो अणाइ कालो अणाइ जीवो अणाइ जिणधम्मो

तइया वि ते पढंता एसुच्चिय जिणणमुक्कारं

जे कोई गया मोक्खं गच्छंति य केवि कम्मफलमुक्का

ते सब्बे वि य जाणसु जिणवकारप्पभाणेव --- लघुनवकारफल १६-१७ गां.

अथ कायोत्सगाग्नन्तरं कृत्यं श्लोकद्वयेनाह ---

प्रोच्य प्राग्वत्ततः साम्यस्वामिनां स्तोत्रदण्डकर्म
वन्दनामुद्रया स्तुत्वा चैत्यानि त्रिप्रदक्षिणम् २७
आलोच्य पूर्ववत्पञ्चगुरुन् नुत्वा स्थितस्तथा
समाधिभक्त्याऽऽस्मत्तलः स्वस्य ध्यायेद् यथाबलम् २८

प्रागवत् --- विग्रहमित्याद्युक्तविधिना साम्यस्वामिनां सामायिकप्रयोक्तृणां
चतुर्विंशतितीर्थकरणाम् २७

आलोच्य--- छ्छामि भंते चेइयभक्तिकाउसग्गो कओडइत्यादिनां पूर्ववत् आनम्रकाड्
घिदोरित्यर्थः उभदःचैत्यभक्तिवदत्र प्रदक्षिणानभ्युपगमात् तथा --- तेन विज्ञाप्यक्रियामित्यादि प्रबन्धोक्तेन
प्रकारेण स्वस्य ध्यायेत् --- आत्मध्यानं विदध्यादित्यर्थः २८

अथात्मध्यानमन्तरेण केचिन्मोक्षो न स्यादित्युपदिशति ---

नात्मध्यानाद्विना किंचित्मुमुक्षोः कर्महिष्टकृत्
किंचिन्नपरिकर्मेव स्यात् कुण्ठस्याततायिनी २९

इष्टकृत् --- मोक्षसाधकम् आततायिनी --- हन्तुमुद्यते शत्रौ

इस प्रकार कायोत्सर्ग तककी क्रियाओंको बताकर उसकेपश्चातके कार्यको दो श्लोकोंसे कहते है

चैत्यभक्ति और कायोत्सर्ग करनेपी पहले शरीरको नम्र करके आदि जो विधि कही है उसीके
अनुसार सामायिकके प्रयोक्ता चौबीस तीर्थकरोंकी भक्तिमें तन्मय होकर ध्योस्सामिड इत्यादि
स्तोत्रदण्डकको पढकर तीन प्रदक्षिणापूर्वक वन्दना- मुद्रासँ जिनप्रतिमाका स्तवन करे फिर पहलेकी
तरह पंचांग नमस्कार करके खडे होकर छ्छामि भंते पंचगुरुभक्तिकाओसग्गो कओ तस्स आलोचेउड हे
भगवन्, मैने पंचगुरुभक्तिपूर्वक कायोत्सर्ग किया, मैं उसकी आलोचना करना चाहता हूँ, इत्यादि
बोलकर आलोचना करे फिर क्रियाकी विज्ञापना आदि करके वन्दनामुद्रापूर्वक पंचपरमेष्ठीको नमस्कार
करके समाधि भक्तिके द्वारा वन्दना सम्बन्धी अतीचारोंको दूर करे फिर यथाशक्ति आत्मध्यान करे २७-
२८

आगे कहते है कि आत्मध्यानकेबिना किसीको भी मोक्ष नहीं होता ---

आत्मध्यानके बिना मोक्षके इच्छुक साधुकी कोई भी क्रिया मोक्षकी साधक नहीं हो सकती फिर भी मुमुक्षु जो आत्मध्यानको छोडकर अन्य क्रियाएँ करता है वह उसी तरह है जैसे मारनेके लिए तत्पर शत्रुके विषयमें आलसी मनुष्य शास्त्राभ्यान करता है २९

विशेषार्थ --- मोक्षका साधक तो आत्मध्यान ही है ऐसी स्थितिमें यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि जब आत्मध्यान ही मोक्षका साधक है तो मुमुक्षुको आत्मध्यान ही करना चाहिए वन्दना भक्ति आदि क्रियाओंकी क्या आवश्यकता है ? इसका उत्तर यह है कि आत्मध्यानसे पहले मुमुक्षुको उसके अभ्यासके लिए चित्तको एकाग्र करनेके लिए बाह्य क्रियाएँ करनी होती है साधु और गृहस्थके लिए षट् कर्म आवश्यक बतलाये है वह इसी दृष्टिसे आवश्यक बतलाये है वे साधुको निरुद्यमी या आलसी नहीं होने देते आज ऐसे भी मुमुक्षु है जो क्रियाकाण्ड व्यर्थ समझकर न तो आत्मसाधना ही करते और श्रावकोचित क्रियाकाण्डमें ही फँसे रहते है ये दोनों ही प्रकारके मुमुक्षु परमार्थसे मुमुक्षु नहीं है अमृत

उक्तं च ---

ध्मग्नाः कर्मनयनावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यत्
मग्ना ज्ञाननयौषिणोऽपि यदतिस्वच्छन्दमन्दोद्यमाः
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च
--- [समय.कलश १११,श्लो.] २९

अथ समाधिमहिम्नोऽशक्यस्तवनत्वमभिधत्ते ---

यः सूते परमानन्दं भूर्भुवः स्वर्भुजामपि
काम्यं समाधिः कस्तस्य क्षमो माहात्म्यवर्णने ३०

भूर्भुवः स्वर्भुजां --- अधोमध्योर्ध्वलोकयतीनाम् ३०

अथ प्राभातिदेववन्दनान्तरकरणीयामाचार्यादिवन्दनामुपदिशति ---

लघ्व्या सिध्दगणिस्तुत्या गणी वन्द्यो गवासनात्
सैध्दान्तोऽन्तःश्रुतस्तुत्या तथान्यस्तन्नुतिं विना ३१

गवासनात् --- गवासने उपविश्य सैध्दान्तः--- सिध्दान्तविद् गणी अन्तःश्रुतस्तुत्या--- अन्तर्मध्ये कृता श्रुतस्तुतिर्यस्याः सिध्दगणिस्तुतेः लघ्वीभिः सिध्दश्रुताचार्यभक्तिभिस्तिस्मृभिरित्यर्थः तथेत्यादिआचार्या-

चन्द्राचार्याने कहा है---जो कर्मनयके अवलम्बनमें तत्पर हैं, उसके पक्षपाती हैं वे भी डूबते हैं जो ज्ञानको तो जानते नहीं और ज्ञानके पक्षपाती हैं, क्रियाकाण्डको छोड स्वच्छन्द हो स्वरूपके विषयमें आलसी हैं वे

भी डूबते हैं^६ किन्तु जो स्वयं निरन्तर ज्ञानरूप हुए कर्मको तो नहीं करते और प्रमादके भी वश नहीं होते, वे सब लोकके ऊपर तैरते हैं^६

जो ज्ञानस्वरूप आत्माको तो जानते भी नहीं और व्यवहार दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप क्रियाकाण्डके आडम्बरको ही मोक्षका कारण जान उसीमें लगे रहते हैं उन्हें कर्मनयावलम्बी कहते हैं वे संसार-समुद्रमें डूबते हैं^६ तथा जो आत्माके यथार्थ स्वरूपको तो जानते नहीं और उसके पक्षपातवश व्यवहार दर्शन, ज्ञान, चारित्रको निरर्थक जानकर छोड़ बैठते हैं ऐसे ज्ञाननयके पक्षपाती भी डूबते हैं; क्योंकि वे बाह्य क्रियाको छोड़कर स्वेच्छाचारी हो जाते हैं और स्वरूपके विषयमें आलसी रहते हैं। किन्तु जो पक्षपातका अभिप्राय छोड़कर निरन्तर ज्ञानरूपमें प्रवृत्ति करते हैं, कर्मकाण्ड नहीं करते, किन्तु जबतक ज्ञानरूप आत्मामें रमना शक्य नहीं होता तबतक अशुभ कर्मको छोड़ स्वरूपके साधनरूप शुभ क्रियामें प्रवृत्ति करते हैं, वे कर्मोंका नाश करके संसारसे मुक्त हो लोकके शिखरपर विराजमान होते हैं ((२९((

आगे कहते हैं कि समाधिकी महिमा कहना अशक्य है ---

जो समाधि अधोलोक, मध्यलोक और स्वर्गलोकके स्वामियोंके लिए भी चाहते योग्य परम आनन्दको देती है, उस समाधिका माहात्म्य वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई भी समर्थ नहीं है ((३०((

आगे प्रातःकालीन देववन्दनाके पश्चात् आचार्य आदिकी वन्दना करनेका उपदेश देते हैं ---

साधुको गवासनसे बैठकर लघुसिद्धभक्ति और लघु आचार्यभक्तिसे आचार्यकी वन्दना करनी चाहिए (यदि आचार्य सिद्धान्तके ज्ञाता हों तो लघुसिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति

दम्यो यतिराचार्यभक्तिं विना लघुसिद्धभक्त्या वन्द्यः (स एव च सैध्वान्तो लघुसिद्धश्रुतभक्तिभ्यां वन्द्य इत्यर्थाः (

उक्तं च ----

घसिद्धभक्त्या बृहत्साधुर्वन्द्यते लघुसाधुना^६
लघ्व्या सिद्धश्रुतस्तुत्या सैध्वान्तः प्रप्रणम्यते^६
सिद्धाचार्यलघुस्तुत्या वन्द्यते साधुभिर्गणी^६
सिद्धश्रुतगणिस्तुत्या लघ्व्या सिद्धान्तविद्गणी^६ []^६ ३१

अथ धर्माचार्यपर्युपास्ति माहात्म्यं स्तुवन्नाह ---

यत्पादच्छायमुच्छिद्य सद्यो जन्मपथक्लमम्^६
वर्वष्टि निर्वृतिसुधां सूरिः सेध्यो न केन सः^६ ३२

वर्वष्टि---भृशं पुनःपुनर्वा वर्षति^६ निर्वृतिः---कृतकृत्यतासन्तोषः^६ ३२

अथ ज्येष्ठयतिवन्दनानुभावं भावयति ---

येऽनन्यसामान्यगुणाः प्रीणन्ति जगदञ्जसां

तान्महन्महतः साधुनिहामुत्र महीयते ३३

महन्---पूजयन् महतः---दीक्षज्येष्ठानिन्द्रादिपूज्यान्वा महीयते---पूज्यो भवति ३३

अथ प्राभातिककृत्योत्तरकरणीयमाह---

प्रवृत्त्यैवं दिनादौ ध्दे नाड्यौ यावद्यथाबलम्

नाडीद्वयोनमध्याह्नं यावत् स्वाध्यायमावहेत् ३४

स्पष्टम् ३४

अथ निष्ठापितस्वाध्यायस्य मुनेः प्रतिपन्नोपवासस्यास्वाध्यायकाले करणीयमुपदिशति---

और आचार्यभक्तिसे उनकी वन्दना करनी चाहिए तथा आचार्यसे अन्य साधुओंकी वन्दना आचार्य भक्तिके बिना सिद्ध भक्तिसे करनी चाहिए किन्तु यदि साधु सिद्धान्तके वेता हों तो सिद्धभक्ति और श्रुतभक्तिपूर्वक उसकी वन्दना करनी चाहिए ३४

आगे धर्माचार्यकी उपासनाकेमाहात्म्यकी प्रशंसा करते हैं---

जिनके चरणोंको आश्रय तत्काल ही संसारमार्गकी थकानको दूर करके निर्वृतिरूपी अमृतकी बारम्बार वर्षा करता है, उन आचार्यकी सेवा कौन नहीं करेगा अर्थात् सभी मुमुक्षुओंकेद्वारा वे सेवनीय हैं ३२

अपनेसे ज्येष्ठ साधुओंकी वन्दनाकेमाहात्म्यको बताते हैं ---

दूसरोंसे असाधारण गुणोंसे युक्त जो आधु परमार्थसे जगत्को सन्तृप्त करते हैं उन दीक्षामें ज्येष्ठ अथवा इन्द्रादिके द्वारा पूज्य साधुओंकी पूजा करनेवाला इस लोक और परलोकमें पूज्य होता है ३३

आगे प्राप्तःकालीन कृत्यकेबादकी क्रिया बताते हैं---

उक्त प्रकारसे प्रभातसे दो घडी पर्यन्त देववन्दना आदि करके दो घडी कम मध्याह्नकाल तक यथाशक्ति स्वाध्याय करना चाहिए ३४

स्वाध्याय कर चुकनेपर यदि मुनिका उपवास हो तो उस अस्वाध्यायकालमें मुनिको क्या करना चाहिए, यह बताते हैं---

ततो देवगुरु स्तुत्वा ध्यानं वाराधनदि वा

शास्त्रं जपं वाऽस्वाध्यायकालेऽभ्यसेदुपोषितः ३५

स्पष्टम् ३५

अथाप्रतिपन्नोपवासस्य भिक्षोर्मध्याह्नकृत्यमाह---

प्राणयात्राचिकीर्षायां प्रत्याख्यानमुपोषितम्
न वा निष्ठाप्य विधिवद् भुक्त्वा भूयः प्रतिष्ठयेत् ३६

प्राणयात्राचिकीर्षायां---भोजनकरणेच्छायां जातायाम् १ निष्ठाप्य---पूर्वदिने प्रतिपन्नं क्षमयित्वा १
प्रतिष्ठयेत्--- प्रत्याख्यानमुपोषितं वा यथासामर्थ्यमात्मनि स्थापयेत् ३६

अथ प्रत्याख्यानादिनिष्ठापनप्रतिष्ठापयोस्तत्प्रतिष्ठापनानन्तरमाचार्यवन्दनायाश्च प्रयोगविधिमाह---

हेयं लघ्व्या सिद्धभक्त्याशानादौ
प्रत्याख्यानाद्याशु चादेयमन्ते १
सूरौ तादृग् योगिभक्त्यग्रया तद्
ग्राह्यं वन्द्यः सूरिभक्त्या स लघ्व्या ३७

आदेयं---लघ्व्या सिद्धभक्त्या प्रतिष्ठाप्यम् १ आचार्य सन्निधाविदम् १ अन्ते---प्रक्रमाद् भोजनस्यैव १
सूरौ---आचार्यसमीपे १ तादृग्योगिभक्त्यग्रया---लघुयोगिभक्त्यधिकया लघ्व्या सिद्धभक्त्या १ उक्तं च---

घसिद्धभक्त्योपवासश्च प्रत्याख्यानं च मुच्यते १
लघ्व्यैव भोजनस्यादौ भोजनान्ते च गृह्यते १
सिद्धयोगिलघुभक्त्या प्रत्याख्यानादि गृह्यते १
लघ्व्या तु सूरिभक्त्यैव सूरिर्वन्द्योऽथ साधुना १ ड[] ३७

उपवास करनेवाले साधुको पूर्वाह्नकालकी स्वाध्याय समाप्त होनेपर अस्वाध्यायके समयमें देव और
गुरुकी वन्दना करके या तो ध्यान करना चाहिए, या पंचनमस्कार मन्त्रका जप करना चाहिए ३५

उपवास न करनेवाले साधुको मध्याह्नकालमें क्या करना चाहिए, यह बताते हैं---

सदि भोजन करनेकी इच्छा हो तो पहले दिन जो प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण किया था उसकी
विधिपूर्वक क्षमापणा करके शास्त्रोक्त विधानके अनुसार भोजन करे १ और भोजन करनेके पश्चात् पुनः
अपनी शक्तिके अनुसार प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण करे ३६

आगे प्रत्याख्यान आदिकी समाप्ति और पुनःप्रत्याख्यान आदि ग्रहण करनेकी तथा प्रत्याख्यान
आदि ग्रहण करनेके अनन्तर आचार्यवन्दना करनेकी विधि कहते हैं ---

पहले दिन जो प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण किया था, भोजनके प्रारम्भमें लघु सिद्धभक्तिपूर्वक
उसकी निष्ठापना या समाप्ति करके ही साधुको भोजन करना चाहिए और भोजनके समाप्त होते ही लघु
सिद्धभक्तिपूर्वक पुनः प्रत्याख्यान या उपवास ग्रहण करना चाहिए १ किन्तु यदि आचार्य पासमें न हों तभी
साधुको स्वयं प्रत्याख्यान आदि ग्रहण करना चाहिए १ आचार्यके होनेपर उनके सम्मुख लघु आचार्य भक्तिके

द्वारा वन्दना करके फिर लघु सिद्ध भक्ति और लघु योगि भक्ति बोलकर प्रत्याख्यान आदि ग्रहण करना चाहिए ३७

अथ सद्यः प्रत्याख्यानाग्रहणे दोषमल्पकालमपि तद्ग्रहणे च गुणं दर्शयति----

प्रत्याख्यानं विना दैवात् क्षीणायुः स्याद् विराधकः

तदल्पकालमप्यल्पमप्यर्थपृथु चण्डवत् ३८

अर्थपृथु --- फलेन बहु भवति चण्डवत् --- चण्डनाम्नो मातङ्गस्य चम्रवरत्रानिर्मातुः क्षणं

मांसमात्रनिवृत्तस्य यथा उक्तं च ---

घण्डोऽवन्तिषु मातङ्गः किल मांसनिवृत्तितः

अप्यल्पकालभाविन्याः प्रपेदे यक्षमुख्यताम् [सोम. उपा., ३१३ श्लो.] ३८

अथा प्रत्याख्यानादिग्रहणानन्तरकरणीयं दैवसिकप्रतिक्रमणादिविधिमाह ---

प्रतिक्रम्याथ गोचरदोषं नाडीद्वयाधिके

मध्याह्ने प्राह्वद्वृत्ते स्वाध्यायं विधिवद् भजेत् ३९

भोजनके अनन्तर तत्काल ही प्रत्याख्यान ग्रहण न करनेपर दोष और थोड़ी देरके लिए भी उसके ग्रहण करनेमें लाभ बतलाते हैं ---

प्रत्याख्यानके बिना पूर्वमें बद्ध आयुर्कर्मके वश यदि आयु क्षीण हो जाये अर्थात् मरण हो जाये तो वह साधु रत्नत्रयका आराधक नहीं रहता तथा थोड़े भी समयके लिए थोड़ा भी प्रत्याख्यान चण्ड नामक चण्डालकी तरह बहुत फलदायक होता है ३८

विशेषार्थ --- बिना त्यागके सेवन न करनेमें और त्यागपूर्वक सेवन न करनेमें आकाश --- पातालका अन्तर है यद्यपि साधुके मूलगुणोंमें ही एक बार भोजन निर्धारित है फिर भी साधु प्रतिदिन भोजन करनेके अनन्तर तत्काल दूसरे दिन तकके लिए चारों प्रकारके आहारका त्याग कर देते हैं इससे दो लाभ हैं --- एक तो त्याग कर देनेसे मन भोजनकी ओर नहीं जाता, वह बँध जाता है दूसरे यदि कदाचित् साधुका मरण हो जाये तो सद्गती सा भी त्याग फलदायक होता है जैसे उज्जैनीमें चण्ड नामक चाण्डाल था वह चमड़ेकी रस्सी बाटता था ओर एक ओर शराब पीता और मांसके पाच पहुँचता तो मांस खाता एक गिरनेसे शराब जहरीली हो गयी थी चण्डने मुनिराजसे व्रत ग्रहा करना चाहा तो महाराजने उससे कहा की जितनी देर तुम मांससे शराबके पास और शराबसे मांसके पास जाते हो उतनी देरके लिए शराब और मांसका त्याग कर दो उसने ऐसा ही किया और रस्सी बटते हुए जब वह मांसके पास पहुँचा तो उसने मांस खाया और जबतक पुनः लौटकर मांसके पास न आवे तबतकके लिए मांसका त्याग कर दिया जैसे ही वह शराबके पास पहुँचा और उसने जहरीली शराब पी उसका मरण हो गया और वह मरकर यक्षोंका मुखिया हुआ कहा है --- घावन्ति देशमें चण्ड नामक चाण्डाल बहुत थोड़ी देरके लिए मांसका त्याग करनेसे मरकर यक्षोंका प्रधान हुआ ३८

प्रत्याख्यान आदि ग्रहण करनेके पश्चात् करने योग्य भोजन सम्बन्धी प्रतिक्रमण आदि की विधि कहते हैं^६

प्रत्याख्यान आदि ग्रहण करनेके अनन्तर भोजनमें लगे दोषोंका प्रतिक्रमण करना

प्राह्वत्---पूर्वाह्ने यथा^{७९}

अथ स्वाध्यासनिष्ठापनानन्तकरणीयं दैवसिकप्रतिक्रमणादिविधिमाह---

नाडीद्वयावशेषेऽह्नि तं निष्ठाप्य प्रतिक्रमम्^८

कृत्वाह्निकं गृहीत्वा च योगं वन्द्यो यतैर्गणी^{८०}

स्पष्टम्^{८०}

अथाचार्यवन्दनानन्तरविधेयं देववन्दनादिविधिमाह----

स्तुत्वा देवमथारभ्य प्रदोषे सद्विनाडिके^८

मुञ्चेन्निशीथे स्वाध्यायं प्रागेव घटिकाद्वयात्^{८१}

शोचमानः---ताच्छील्येन शोचन्^८ जिताशनः---आहारेणाग्लपितः^८ दन्त्यसकारको वा पाठः^८ तत्र पर्यक्छाद्यासनेनासंजातखेद इत्यर्थः^८

उक्तं च ---

घ्नानाद्याराधने प्रीतिं भयं संसारदुःखतः^८

पापे पूवार्जिते शोकनिद्रां जेतु सदा कुरु^८ []^{८२}

चाहिए^८ उसके बाद दो घडी मध्याह्न बीतनेपर पूर्वाह्नकी तरह विधिपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिए^{८३}

मध्याह्नकालकी स्वाध्यायके अनन्तर दिन सम्बन्धी प्रतिक्रमण आदिकी विधि बताते हैं---

संयमियोंको जब दिनमें दो घडी काल बाकी रहे तब स्वाध्यायको समाप्त करके दिन सम्बन्धी दोषोंकी विशुद्धिके लिए प्रतिक्रमण करना चाहिए^८ उसके बाद रात्रियोग ग्रहण करके आचार्यकी वन्दना करनी चाहिए^{८०}

आगे आचार्यवन्दनाके अनन्तर करने योग्य देववन्दना आदिकी विधि बताते हैं---

आचार्यवन्दनाके अनन्तर देववन्दना करके रात्रिका प्रारभ हुए दो घडी बीतनेपर स्वाध्यायका आरभ्य करे और आधी रातमें दो घडी शेष रहनेके पूर्व ही स्वाध्यायको समाप्त कर दे^{८१}

रात्रिमें स्वाध्याय समाप्त करके निद्राको जीपनेके उपाय बताते हैं---

ज्ञान आदिकी आराधनासे उत्पन्न हुए आनन्द रससे परिपूर्ण, संसारसे भीरु, पूर्व संचित पापका शोक करनेवाला और अशन अर्थात् भोजनको जीतनेवाला या आसनको जीतनेवाला ही निद्राको जीत सकता है^{८२}

विशेषार्थ---निद्राको जीतनेके चार उपाय हैं---ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना, चारित्राराधना और तप आराधनाके करनेसे जो प्रगाढ आनन्द होता है उस आनन्दमें निमग्न साधु निद्राको जीत सकता है संसारसे भय भी निद्राको जीतनेमें सहायक होता है पूर्वसंचित पापकर्मका शोक करनेसे भी निद्राको भगाया जा सकता है चौथा कारण है

अथ स्वाध्यायकरणेऽशक्तस्य च दैववन्दनाकरणे विधानमाह---

सप्रतिलेखनमुकुलितवत्सोर्गुडितकरः सपर्यङ्कः^६

कुर्यादेवकाग्रमनाः स्वाध्यायं वन्दनां पुनरशक्त्या^७४३

वत्सोत्सर्गुडितौ--- पक्षोमध्यस्थापितौ^६ सपर्यङ्कः उपलक्षणाद् वीरासनादियुक्तोऽपि^७ उक्तं च---

घृणित्यङ्गणसेज्जगदो पडिलेहियय अंजलीकदपणामो^६

सुत्तत्थजोगजुत्तो पडिदब्बो आदसत्तीए^७ [मूलाचार गा. २८१]

अशक्त्या---उभदो यदि वन्दितुं न शक्नुयादित्यर्थः^६४३

अथ प्रतिक्रमणे योगग्रहणे तन्मोक्षणे च कालविशेषो व्यवहारादेव पूर्वोक्तः प्रतिपत्तव्यः^६

धर्मकार्यादिव्यासगुडेन ततोऽन्यदापि तद्विधाने दोषाभावादित्युपदेशार्थमाह---

अल्प और सात्विक भोजन, क्योंकि भरपेट पौष्टिक भोजन करनेसे नींद अधिक सताती है श्लोकमें घृजिताशनःऽ पाठ है तालव्य घ्राड के स्थानमें दन्ती स करनेसे अर्थ होता है पर्यङ्क आदि आसनसे बैठनेसे खेद न होना^६ अर्थात् रात्रिमें आसन लगाकर बैठनेसे निद्राको जीता जा सकता है थककर लेटने पा तो निद्रा आये बिना नहीं रह सकती^६ कहा भी है---घ्हे मुनि ! तू निद्राको जीतनेकेलिए ज्ञानादिकी आराधनामें प्रीति, संसारकेदुःखसे भय ओर पूर्व संचित पापकर्मोंका शोक सदा किया कर^६४३

जो स्वाध्याय करनेमें असतर्था हैं उनकेलिए देववन्दनाका विधान करते हैं ----

पीछी सहित दोनों हाथोंको अंजली बद्ध करके और छातीके मध्यमें स्थापित करके पर्यङ्कासन या वीरासन आदिसे एकाग्रमन होकर स्वाध्याय करना चाहिए^६ यदि स्वाध्याय करनेमें असमर्थ हो तो उसी प्रकारसे वन्दना करनी चाहिए^६४३

विशेषार्थ---मूलाचारमें स्वाध्यायकी विधि इस प्रकार कही है --- घृणित या वीर आसनसे बैठकर चक्षुसे पुस्तकका, पीछीसे भूमिका और शुद्ध जलसे हाथ-पैरका सम्मार्जन करके दोनों हाथोंको मुकुलित करके प्रणाम करे^६ और सुत्र तथा अर्थाके योगसे युक्त अपनी शक्तिसे स्वाध्याय करे^६ इस प्रकार साधुको स्वाध्याय करना आवश्यक है; क्योंकि स्वाध्याय भी दूसरी समाधि है^६ कहा है---मनको ज्ञानके अधीन, अपने शरीरको विनयसे युक्त, वचनको पाठके अधीन और इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके, जिन वचनोंमें उपयोग लगाकर स्वाध्याय करनेवाला आत्मा कर्मोंका क्षय करता है, इस प्रकार यह स्वाध्याय दूसरी

समाधि है किन्तु जो मुनि स्वाध्याय करनेमें असमर्थ होता है वह उसी विधिसे देववन्दना करता है यद्यपि देववन्दना खडे होकर की जाती है किन्तु अशक्य होनेसे बैठकर कर सकता है ४३

प्रतिक्रमणके द्वारा योगके ग्रहण और त्यागमें पहले कहा हुआ काल विशेष व्यवहारके अनुसार ही जानना किन्तु धर्मकथा आदिमें लग जानेसे यदि उस कालमें योगधारण और प्रतिक्रमण न करके अन्यकालमें करता है तो उसमें कोई दोष नहीं है, यह कहते हैं---

१. घ्ननो बोधाधीनं विनयविनियुक्तं निजवपु-

र्वचः पाठायत्तं करणगणमाधाय नियतम्

दधानः स्वाध्यायं कृतपरिणतिर्जेनवचने,

करोत्यात्मा कर्मक्षयमिति समाध्यन्तरमिदम् ४ []

योगप्रतिक्रमविधिः प्रागुक्तो व्यावहारिकः

कालक्रमनियामोऽत्र न स्वाध्यायादिवद्यतः ४४

स्वाध्याययदिवत्---स्वाध्याये देववन्दनायां भक्तप्रत्याख्याने च ४४

अथोत्तरप्रबन्धेन नैमित्तिकक्रियां व्याकर्तुंकामः प्रथमं तावच्चतुर्दशीक्रियाप्रयोगविधि मतद्वयेनाह---

त्रिसमयेत्यादि---एतेन नित्यत्रिकालदेववन्दनायुक्तैव चतुर्दशी क्रिया कर्तव्येति लक्षयति

प्राहुः---

प्राकृतक्रियाकाण्डचारित्रमतानुसारिणः सूरयः प्रणिगदन्ति यथाह क्रियाकाण्डे---

घञिनदेववन्दणाए चेदियभती य पञ्चगुरुभती

चउदसियं तं मज्जे सुदभती होइ कायव्वा []

चारित्रसारेऽप्याह---ध्वेवतास्तवनक्रियायां चैत्यभक्तिं पञ्चगुरुभक्तिं च कुर्यात् चतुर्दशीदिने तयोर्मध्ये श्रुतभक्तिर्भवति इति

वेऽपि---संस्कृतक्रियाकाण्डमतानुसारिणः तत्पाठो यथा---

घसिध्दे चैत्ये श्रुते भक्तिस्तथा पञ्चगुरुश्रुतिः

शान्तिभक्तिस्तथा कार्या चतुर्दश्यामिति क्रिया ४ [] ४५

पहले जो रात्रियोग और प्रतिक्रमणकी विधि कही है वह व्यवहार रूप है क्योंकि स्वाध्याय आदिकी तरह योग और प्रतिक्रमण विधिमें कालक्रमका नियम है कि अमुक समयमें ही होना चाहिए वैसा नियम रात्रियोग और प्रतिक्रमणमें नहीं है समय टालकर भी किये जा सकते हैं ४४

इस प्रकार नित्य क्रियाके प्रयोगका विधान जानना

आगे नैमित्तिक क्रियाका वर्णन करते हुए प्रथम ही चतुर्दशीके दिन करने योग्य क्रिया की विधि कहते हैं---

प्राकृत क्रियाकाण्ड और चारित्रसार नामक ग्रन्थोंके मतानुसार प्रातःकाल, मध्याह्न और सायंकालके समय देववन्दनाके अवसरपर जो नित्य चैत्यभक्ति और पंचगुरु भक्ति की जाती है, चतुर्दशीके दिन उन दोनों भक्तियोंके मध्यमें श्रुतभक्ति भी करनी चाहिए^६ किन्तु संस्कृत क्रियाकाण्डके मतानुसार चतुर्दशीके दिन उन तीनों भक्तियोंके आदि और अन्तमें क्रमसे सिद्धभक्ति और शान्तिभक्ति करनी चाहिए^{६४५}

विशेषार्थ---चतुर्दशीके दिन किये जानेवाले नैमित्तिक अनुष्ठानमें मतभेद है^६ प्राकृत क्रियाकाण्डमें कहा है --- घृजिनदेवकी वन्दनामें प्रतिदिन चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति की जाती है^६ किन्तु चतुर्दशीके दिन इन दोनों भक्तियोंके मध्यमें श्रुतभक्ति करनी चाहिए^६

इसी तरह चारित्रसारमें कहा है---घृदेववन्दनामें चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति करनी चाहिए किन्तु चतुर्दशीके दिन उन दोनों भक्तियोंके मध्यमें श्रुतभक्ति भी करनी चाहिए^६

इस तरह प्राकृत क्रियाकाण्ड और चारित्रसारका मत एक है^६

किन्तु संस्कृत क्रियाकाण्डमें कहा है---घृचतुर्दशीमें क्रमसे सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति करनी चाहिए^{६४५}

अथ कार्यवशाच्चतुर्दशीक्रियाव्यतिक्रमे प्रतिविधपनमाह---

चतुर्दशीक्रिया धर्मव्यासगुडादिवशान्न चेत्^६
कर्तुं पार्येत पक्षान्ते तर्हि कार्याष्टमीक्रिया^{६४६}

व्यासगुडादि---आदिशब्देन क्षपकनिर्यापणादि^६ पक्षान्ते---अमावस्यापौर्णमास्ययोः^६ उक्तं च चारित्रसारे---

घृचतुर्दशीदिने धर्मव्यासगुडादिना क्रियां कर्तुं न लभ्येत चेत् पाक्षिकेऽष्टम्याः क्रिया कर्तव्येति^६

क्रियाकाण्डेऽपि---

घृजदि पुण धम्मव्वासंगा ण कया होज्ज चउइसी किरिया^६
तो पुण्णिमाइदिवसे कायव्वा पक्खिया किरिया^{६४६}

अथाष्टम्याः पक्षान्तस्य च क्रियाविधिं चारित्रभक्त्यनन्तरभाविनं सर्वत्रालोचनाविधिं चोपदिशति---

स्यात् सिद्धश्रुतचारित्रशान्तिभक्त्याष्टमीक्रिया^६
पक्षान्ते साऽश्रुता वृत्तं स्तुत्वालोच्यं यथायथम्^{६४७}

अश्रुता---श्रुतवर्ज्या^६ उक्तं च चारित्रसारं---६अष्टम्यां सिद्धश्रुतचारित्रशान्तिभक्तयः^६ पाक्षिके
सिद्धचारित्रशान्तिभक्तयः^६ इति^६

यत्पुनः संस्कृतक्रियाकाण्डे---

सिद्धश्रुतसुचारित्रचैत्यपञ्चगुरुस्तुतिः^६
शान्तिभक्तिश्च पष्ठीयं क्रिया स्यादष्टमीतिथौ^६
सिद्धचारित्रचैत्येषु भक्तिः पञ्चगुरुष्वपि^६
शान्तिभक्तिश्च पक्षान्ते जिने तीर्थे च जन्मनि^६ [] इति^६

श्रूयते, तन्नित्यदेववन्दनायुक्तयारेतयोर्विधानमुक्तमिति वृद्धसंप्रदायः^६ ४७

यदि कार्यवश चतुर्दशीको उक्त क्रिया करनेमें भूल हो जाये तो उसका उपाय बतलाते हैं---

किसी धार्मिक कार्यमें फँस जानेके कारण यदि साधु चतुर्दशीकी क्रिया न कर सके तो उसे
अमावस्या और पूर्णमासीको अष्टमी क्रिया करनी चाहिए^६ ४६

विशेषार्थ--इस विषयमें चारित्रसार और प्राकृत क्रियाकाण्डमें भी ऐसी ही व्यवस्था है^६ यथा---यदि
चतुर्दशीके दिन धर्मकार्यमें फँस जाने आदिके कारण क्रिया न कर सके तो पक्षान्तमें अष्टमीकी क्रिया करनी
चाहिए^६ ४६

आगे अष्टमी और पक्षान्तकी क्रियाविधिको तथा चारित्रभक्तिके अनन्तर होनेवाली आलोचना
विधिको कहते हैं---

सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति और शान्तिभक्तिके साथ अष्टमी क्रिया की जाती है^६ पाक्षिकी
क्रिया इनमें---से श्रुतभक्तिके बिना बाकी तीन भक्तियोंसे की जाती है^६ तथा साधुओंको चारित्रभक्ति करके
यथायोग्य आलोचना करनी चाहिए^६ ४७

विशेषार्थ--चारित्रसार (पृ.७१) में भी ऐसा ही कहा है कि अष्टमीमें सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति,
चारित्रभक्ति, और शान्तिभक्ति की जाती है और पाक्षिकमें सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति और शान्तिभक्ति
की जाती है^६ किन्तु संस्कृत क्रियाकाण्डमें कहा है---६अष्टमीको सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति,
चैत्यभक्ति, पञ्चगुरुभक्ति और छठी शान्तिभक्ति करनी चाहिए^६ और पक्षान्त अर्थात् अमावस्या और
पूर्णमासीको तथा तीर्थकरके जन्मकल्याणक-

अथ सिद्धप्रतिमायां तीर्थकरजन्मन्यपूर्वजिनचैत्ये च क्रियोपदेशार्थमाह ---

सिद्धभक्त्यैकया सिद्धप्रतिमायां क्रिया मता ।

तीर्थकृज्जन्मनि जिनप्रतिमायां च पाक्षिकी ॥४८॥

अथापूर्वचैत्यवन्दनानित्यदेववन्दनाभ्यामष्टयादिक्रियासु योगे चिकीर्षिते चैत्यपञ्चगुरुभक्त्योः
प्रयोगस्थानमाह

दर्शनमूजात्रिसमयवन्दनयोगोऽष्टमीक्रियादिषु चेत् ।

प्राक् तर्हि शान्तिभक्तेः प्रयोजयेच्चैत्यपञ्चगुरुभक्ती ॥४९॥

दर्शनपूजा - अपूर्वचैत्यवन्दना । उक्तं च चारित्रसारे ---अष्टम्यादिक्रियासु
दर्शनपूजात्रिकालदेववन्दनायोगे शान्तिभक्तितः प्राक् चैत्यभक्तिं पञ्चगुरुभक्तिं च कुर्यात् इति ॥४९॥

अथैकत्र स्थानेऽनेकापूर्वचैत्यदर्शने क्रियाप्रयोगविषये पुनस्तदर्शने तदपूर्वत्वकालेयत्तां चोपदिशति

दृष्ट्वा सर्वाण्यपूर्वाणि चैत्यान्येकत्र कल्पयेत् ।

क्रियां तेषां त षष्ठेऽनुश्रूयते मास्यपूर्वता ॥५०॥

एकत्र --- एकस्मिन्नभिरुचिते जिनचैत्यविषये । अनुश्रूयते --- व्यवहर्तृजनपारंपर्येणाकर्ण्यते
॥५०॥

केदिन सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति करनी चाहिए ।

इसके सम्बन्धमें ग्रन्थकार पं. आशाधरजीने अपनी संस्कृत टीकामें लिखा हैं कि संस्कृत
क्रियाकाण्डका यह विधान नित्य देववन्दनाके साथ अष्टमी---चतुर्दशीकी क्रियाको करनेवालोंके लिए है ऐसा
वृद्ध सम्प्रदाय है ॥४७॥

आगे सिद्ध प्रतिमा, तीर्थकर भगवान्का जन्मकल्याणक और अपूर्व जिनप्रतिमा के विषयमें करने
योग्य क्रिया कहते हैं ---

सिद्ध प्रतिमाकी वन्दनामें एक सिद्धभक्ति ही करनी चाहिए । और तीर्थकरके जन्मकल्याणकमें
तथा अपूर्व जिनप्रतिमामें पक्षिकी क्रिया अर्थात् सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति और शान्तिभक्ति करनी चाहिए
॥४८॥

अपूर्ण चैत्यवन्दना और नित्यदेववन्दनाको यदि अष्टमी आदि क्रियामें मिलाना इष्ट हो तो
चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति कब करनी चाहिए, यह बतलाते हैं ---

यदि अष्टमी आदि क्रियाओंके साथ अपूर्व चैत्यवन्दना और त्रैकालिक नित्यादेववन्दना करनेका यो
उपस्थित हो तो शान्तिभक्तिसे पहले चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति करनी चाहिए ॥४९॥

विशेषार्थ --- चारित्रसारमें ऐसा ही विधान है । यथा --- अष्टमी आदि क्रियाओंके साथ अपूर्व
चैत्यवन्दना और त्रिकालदेववन्दनाका योग होनेपर शान्तिभक्तिसे पहले चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति
करनी चाहिए । ॥४९॥

एक ही स्थानपर अनेक अपूर्व प्रतिमाओंका दर्शन होनेपर क्रिया प्रयोगकी विधितथा कितने कालके
बाद उन्हीं प्रतिमाओंका दर्शन होनेपर उन्हें अपूर्व माना जाये यह बतलाते हैं ---

यदि एक ही स्थानपर अनेक अपूर्व प्रतिमाओंका दर्शन हो तो उन सब प्रतिमाओंका दर्शन करके उनमें ज्ञान से जिसकी ओर मन विशेष रूपसे आकृष्ट हो उसीके लक्ष्य करके पहले

अथ क्रियविषयतिथिनिर्णयार्थमाह -

त्रिमुहूर्तेऽपि यत्रार्कउदेत्यस्तमयत्यथ ।

स तिथिः सकलो ज्ञेयः प्रायो धर्मेषु कर्मसु ॥ ५१ ॥

प्रायः - देशकालादिवशादन्यथापि । बहुधा व्यवहर्तृणां प्रयोगदर्शनादेतदुच्यते ॥ ५१ ॥

अथ प्रतिक्रमणाप्रयोगविधि श्लोकपञ्चकेनाचष्टे -

पाक्षिक्यादि- प्रतिक्रान्तौ वन्देरन् विधिवद् गुरुम् ।

सिध्ववृत्तस्तुती कुर्याद गुर्वी चालोचनां गणी ॥ ५२ ॥

देवस्याग्रे परे सूरः सिध्वयोगिस्तुती लघू ।

सवृत्तालोचने कृत्वा प्रायत्रिचत्तमुपेत्य च ॥ ५३ ॥

पाक्षिक्यादिप्रतिक्रान्ती - पाक्षिक्यां चातुर्मासिक्यां सांवत्सरिक्यां च प्रतिक्रमणायां क्रियमाणायाम् । विधिवद् - लब्ध्या सिध्वेत्यादिपूर्वोक्तविधिना । गणिं उणादाविदं तोयं (?) गुर्वीच्छामि भन्ते अङ्गमियं हि आलोचेऽमित्यादि । दण्डकस्कन्धसाध्यां सैषा सूरः शिष्याणां च साधारणी क्रिया ॥ ५२ ॥ देवस्याग्रे गणीकृत्वेति

कहे अनुसार क्रिया करनी चाहिए । तथा व्यवहारी जनोंकी परम्परासे सुना जाता है कि उन प्रतिमाओंकी अपूर्वता छठे मासमें होती है अर्थात् इतने कालके बाद उनका दर्शन करनेपर वे प्रतिमा अपूर्व मानी जाती हैं ॥ ५० ॥

आगे क्रियाओंके विषयमें तिथिका निर्णय करते हैं -

जिस दिन तीन मुहूर्त भी सूर्यका उदय अथवा अस्त हो वह सम्पूर्ण तिथि प्रायः करके धार्मिक कार्योंमें मान्य होती है ॥ ५१ ॥

विशेषार्थ - सिंहनन्दिके व्रततिथिनिर्णयमें कहा है कि जैनोंके यहाँ उदयकालमें छह घड़ी प्रमाण तिथिका मान व्रतके लिए मान्य है । छह घड़ी तीन मुहूर्त प्रमाण होती है । यहाँ घ्रायःऽऽ पद दिया है । ग्रन्थकार पं. आशाधरजीने अपनी टीकामें लिखा है कि देशकालके कारण इससे अन्यथा भी व्यवहार हो सकता है । बहुधा व्यवहारी जनोंका ऐसा ही व्यवहार देखा जाता है इसलिए ऐसा कहा है । सिंहनन्दिने भी अपने ग्रन्थमें किन्हीं पद्मदेवके ऐसे ही कथनपर - से यही शंका की है और उसका समाधान भी यही किया है । यथा - यहाँ कोई शंका करता है कि पद्मदेवने तिथिका मान छह घड़ी बतलाते हुए कहा है कि प्रायः धर्मकृत्योंमें इसीको ग्रहण करना चाहिए । यहाँ घ्रायःऽऽ शब्दका क्या अर्थ है ? उत्तर देते हैं कि देश- काल आदिके भेदसे तिथिमान ग्रहण करना चाहिए । इसके लिए घ्रायःऽऽ कहा है ॥ ५१ ॥

आगे प्रतिक्रमणके प्रयोगकी विधि पाँच श्लोकोंसे कहते हैं -

पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिक प्रतिक्रमण करनेपर शिष्यों और सधर्माओंको पहले बतलायी हुई विधिके अनुसार आचार्यकी वन्दना करनी चाहिए । इसके अनन्तर अपने शिष्यों और सधर्माओंके साथ आचार्यको गुरुसिद्धभक्ति और गुरुचारित्रभक्ति करनी चाहिए । तथा अर्हन्तदेवके सम्मुख बड़ी आलोचना करनी चाहिए । उसके बाद आचार्यके आगे शिष्यों और सधर्माओंको लघुसिद्धभक्ति, लघु योगिभक्ति, चारित्रभक्ति

१. घअत्र संशयं करोति पद्मदेवैः घ्रायो धर्मेषु कर्मसुड इत्यत्र प्राय इत्यव्ययं कथितम् । तस्य कोऽर्थः ? उच्यते

देशकालादिभेदात् तिथिमानं ग्राह्यम् । ङ - [व्रततिथिनिर्णय, पृ. १८२]

संबन्धः । सूरेः - आचार्यस्याग्रे कृत्वेति संबन्धः । ङ सवृत्तालोचने - इच्छामि भन्ते चरित्तायारो इत्यादि दण्डकपञ्चकसाम्यया चारित्रालोचनया युङ्क्ते ॥ ५३ ॥

वन्दित्वाचार्यमाचार्यभक्त्या लघ्व्या ससूरयः ।
प्रतिक्रान्तिस्तुतिं कुर्युः प्रतिक्रमेत्ततो गणी ॥ ५४ ॥
अथ वीरस्तुति शान्तिचतुर्विंशतिकीर्तनाम् ।
सवृत्तालोचनां गुर्वी सगुर्वालोचनां यताः ॥ ५५ ॥
मध्यां सूरिनुतिं तां च लघ्वीं कुर्युः परे पुनः ।
प्रतिक्रमा बृहन्मध्यसूरिभक्तिद्वयोज्जिताः ॥ ५६ ॥

वन्दित्वा, शिष्याः आचार्यस्तु देवमेव वयीकृत्याचार्यवन्दनामिति शेषः । प्रतिक्रमन् - प्रतिरमणदण्डकान् पठेत् ॥ ५४ ॥ शान्तीत्यादि - शान्तिकीर्तनां विधेयरक्षामित्यादिकम् । चतुर्विंशतिकीर्तनं - घउवीसं तित्थयरेड इत्यादिकम् । सवृत्तालोचनां - लघ्व्या चारित्रालोचनया सहिताम् । गुर्वी - सिद्धस्तुत्यादिकाम् । चारित्रालोचनासहितबृहदाचार्यभक्तिमित्यर्थः । सगुर्वालोचनां- देसकुलजाइ इत्यादिका बृहदालोचनासहित - मध्याचार्यभक्तिमित्यर्थः ॥ ५५ ॥ तां लघ्वीं घ्राज्ञः प्राप्तङ् इत्यादिकां क्षुल्लकाचार्यभक्तिरित्यर्थः । परव्रता- रोपणादिविषयाश्चत्वारः । उक्तं च -

घसिद्धचारित्रभक्तिः स्याद् बृहदालोचना ततः ।
देवस्य गणिनो वाग्रे सिद्धयोगिस्तुती लघू ॥
चारित्रालोचना कार्या प्रायश्चित्तं ततस्तथा ।
सूरिभक्त्यास्ततो लघ्व्या गणिनं वन्दते यतिः ॥

और आलोचना करके तथा प्रायश्चित्त लेकर लघु आचार्यभक्तिके द्वारा आचार्यकी वन्दना करनी चाहिए । फिर आचार्य सहित शिष्य और सधर्मा मुनि प्रतिक्रमणभक्ति करें । फिर आचार्य प्रतिक्रमण दण्डकका पाठ

करें । फिर साधुओंको वीरभक्ति करनी चाहिए । फिर आचार्यके साथ शान्तिभक्ति और चतुर्विंशति तीर्थकरभक्ति करनी चाहिए । फिर चारित्रकी आलोचनाके साथ बृहत् आचार्यभक्ति करनी चाहिए । उसके बाद बृहत् आलोचनाके साथ मध्य आचार्यभक्ति तथा लघु आचार्यभक्ति करनी चाहिए । अन्य प्रतिक्रमणोंमें बृहत् आचार्यभक्ति और मध्य आचार्यभक्ति नहीं की जाती ॥ ५२-५६ ॥

विशेषार्थ - यहाँ पाक्षिक, चातुर्मासिक और वार्षिक प्रतिक्रमणके समय की जानेवाली विधिका वर्णन है । ये प्रतिक्रमण आचार्य, शिष्य तथा अन्य साधु सम्मिलित रूपसे करते हैं । सबसे प्रथम आचार्यकी वन्दना की जाती है । आचार्य - वन्दनाकी विधि पहले बतला आये हैं कि आचार्यकी वन्दना लघुसिद्धभक्ति और लघु आचार्यभक्ति पढकर गवासनसे करनी चाहिए । यदि आचार्य सिद्धान्तविद् हो तो सिद्ध श्रुत और आचार्यभक्तिके द्वारा उसकी वन्दना करनी चाहिए । इन तीनों भक्तियोंको पढते समय प्रत्येक भक्तिके प्रारम्भमें अलग - अलग तीन वाक्य बोले जाते हैं । सिद्ध भक्तिके प्रारम्भमें घनमोऽस्तु प्रतिष्ठापनसिद्ध - भक्तिकायोत्सर्ग करोम्यहम् उ घनमस्कार हो, मैं प्रतिष्ठापन सिद्धभक्तिपूर्वक कायोत्सर्ग करता हूँ यह वाक्य बोले जाते हैं, तब सिद्धभक्ति की जाती है । इसी प्रकार श्रुतभक्तिके प्रारम्भमें घनमोऽस्तु प्रतिष्ठापनश्रुतभक्तिकायोत्सर्ग करोम्यहम् उ वाक्य और आचार्य भक्तिके प्रारम्भमें घनिष्ठापनाचार्यभक्तिकायोत्सर्ग करोम्यहम् उ यह वाक्य बोला जाता है । इसके पश्चात् अपने शिष्यों और सधर्माओंके साथ आचार्य इष्टदेवको नमस्कार करके